वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 372
ISBN-978-93-82071-52-5

ऋषभदेव समवसरण विधान

–रचयित्री –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव-2012, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 61वें त्यागदिवस के अवसर पर घोषित चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
1100 प्रतियाँ	फाल्गुन कृ. चतुर्थी, 1 मार्च 2013	24/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–स्वस्तिश्री पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

धर्म एवं समाज का दर्पण है साहित्य। साहित्य ही धर्म एवं संस्कृति को जीवित रखने में सक्षम है। भगवान महावीर के निर्वाणगमन के पश्चात् अनेकानेक आचार्य हुए, जिन्होंने आत्मध्यान करते हुए ग्रंथों का लेखन किया, जिनके आधार पर आज हम जैनधर्म का ज्ञान प्राप्त कर प रहे हैं।

पूर्वाचार्यप्रणीत यह जिनागम वर्तमान में साक्षात् केवलीकी वाणी का ही स्वरूप है जिसके द्वारा भूत, भावि और वर्तमान का परिज्ञान हमें हो रहा है। प्राचीन शास्त्र मूलसूत्र और श्लोकरूप थे, जिसे बाद के आचार्यों ने टीका करके और सरल कर दिया। क्षयोपशम के घटने के साथ-साथ आचार्यों एवं विद्वानों के द्वारा हिन्दी टीका होकर वह विषय और सरल हो गया, इसी क्रम में चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की निष्कलंक परम्परा में बीसवीं सदी की ब्राह्मीमाता के सदृश ज्ञानमती माताजी ने इस परम्परा को वृद्धिंगत करते हुए साहित्यिक क्षेत्र में अभूतपूर्व कीर्तिमान स्थापित किया और अपने ज्ञानरूपी समुद्र से250 अमूल्य रत्न सदृश साहित्यिक कृतियों को हमें प्रदान किया, जिसके लिए जैन समाज उनका चिरऋणी रहेगा।

आगम की कट्टर पोषक, दृढ़ निश्चय की धनी, अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सभी को आश्चर्यचकित करने वाली, दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधिएवं अनेकानेक उपाधियों को प्राप्त करने के बाद भी निस्पृह, निश्छल, निरभिमान परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने जैनागम के चतुरनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त कर न्याय, व्याकरण, छंद, अलंकार, भूगोल,अध्यात्म, सिद्धान्त आदि प्रत्येक विषय पर अपनी लेखनी चलाई, जो आज भी प्रवाहमान है। भक्ति की श्रृँखला में अनेकानेक विधानों की रचना कर तो उन्होंने एक कीर्तिमान ही स्थापित करदिया है। भारत के कोने-कोने में आज पूज्य माताजी द्वारा लिखित विधानों के द्वारा जिनेन्द्र भगवान कीआराधना कर भव्य प्राणी कर्मनिर्जरा करते देखे जाते हैं। भक्ति की उसी श्रृँखला में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के गुणानुवाद में रचित उनका यह नूतन ''श्री ऋषभदेव समवसरण विधान'' भी एक अनमोल कृतिहै, जिसके द्वारा हम भगवान ऋषभदेव के समवसरण का विस्तृत वर्णन प्राप्त कर सकते हैं।

पूज्य माताजी के अलौकिक व्यक्तित्व को शब्दों की सीमा में नहीं बांधा जा सकता है। यह हमारा सौभाग्य ही है कि हम ऐसी सरस्वती स्वरूपा माताजी के दर्शन एवं उनके चरण सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं, साथ ही संस्थान द्वारा संचालित वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला से पूज्य माताजी द्वारा लिखित ग्रंथों का सम्पादन कर महान पुण्य का संचय कर रहे हैं। पूज्य माताजी की अन्य कृतियों की भांति ही यह कृति भी भक्तों को क्रमशः भक्ति करते हुए युक्तिपूर्वक मुक्ति के वरण में निमित्तभूत सिद्ध होवे, यही इस कृति के प्रकाशन की सार्थकता है और पूज्य माताजी चिरायु होकर इसी प्रकार अपनी ज्ञानरश्मियों से हमें अभिसिंचित करती रहें यही वीरप्रभू से मंगल प्रार्थना है।

प्रस्तावना

–ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)

श्री मानतुंगाचार्य ने भक्तामर स्तोत्र में समवसरण की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है–

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र! धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा, तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि।।

तीर्थंकर भगवन्तों की दिव्य उपदेश सभा अथवा असंख्य भव्य जीवों का बिना एक-दूसरे को बाधा पहुँचाए शरण प्राप्त कर भगवान की दिव्यदेशना का पान करना ''समवसरण'' है।

पंचकल्याणक के अधिपति तीर्थंकर भगवान को दिव्य केवलज्ञान की प्राप्तिहोने पर अतुलित वैभव से युक्त इस समवसरण की रचना सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से धनकुबेर करता है। पृथ्वी से 20000 हाथ ऊपर निर्मित इस समवसरण की 20 हजार सीढ़ियों को अंधे, लूले, लंगड़े, रोगी, बालक सभी अन्तर्मुहूर्त में पार कर जाते हैं ऐसी इसकी महिमा है। इस समवसरण में चार परकोटे, पाँच वेदियाँ, आठ भूमियाँ, तीन कटनी, चार वीथी, चार मानस्तंभ आदि निर्मित हैं जिसमें तीसरी कटनी पर गंधकुटी के मध्य भगवान अधर विराजमान रहते हैं। इस हुण्डावसर्पिणी काल में प्रथम समवसरण की रचना वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की प्रयाग नगरी में हुई, जो छियानवे मील का था। पहले इसी भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में चतुर्थकाल में तीर्थंकरों के ये समस्त वैभव साक्षात् दृष्टिगत होते थे किन्तु पंचमकाल में तीर्थंकरों का जन्म न होने से भले ही उन तीर्थंकर भगवान की साक्षात् वाणी हमें सुलभ नहीं है किन्तु जिनवर के लघुनंदन मुनिवरों की वाणी, उनके द्वारा लिपिबद्ध ग्रंथ हमें सुलभ हैं। ग्रंथ लेखन की उसी श्रृँखला में बीसवीं शताब्दी में एक ऐतिहासिक कीर्तिमान रचने वाली साक्षात् सरस्वती स्वरूपा परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती जैसी अनमोल निधि इस जिनशासन को प्राप्त हुई, जिन्होंने न सिर्फ तीर्थंकर भगवन्तों की पंचकल्याणक भूमियों का विकास-जीर्णोद्धार करवाया, न सिर्फ कुमारी कन्याओं के लिए त्याग का मार्ग प्रशस्त किया अपितु अपने अलौकिक व्यक्तित्व और कृतित्व से जैनधर्म का अलख जगाते हुए चतुरनुयोगों से समन्वित 250 ग्रंथों की रचना कर हमें देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति का ऐसा अपूर्व और पुण्यशाली माध्यम प्रदान किया, जिससे हम भक्तिमार्ग का आश्रय लेकर सहज ही अपनी कर्मश्रृँखला को काटकर सातिशय पुण्य का संचय कर सकते हैं।

उसी क्रम में कैवल्यमयी अवस्था में समवसरण में विराजित भगवान ऋषभदेव के गुणानुवाद हेतु उन्होंने अतिशय महिमाशाली ''श्री ऋषभदेव समवसरण विधान'' की रचना की है, जिसमें 5 पूजा एवं 6 जयमालाएँ हैं। प्रथम समवसरण पूजा में 27 अर्घ्य एक पूर्णार्घ्य, द्वितीय तीर्थंकर गुणपूजा में 50 अर्घ्य एक पूर्णार्घ्य, तृतीय गणधर पूजा में 84 अर्घ्य एक पूर्णार्घ्य, चौथी सर्वसाधु पूजा में 7 अर्घ्य एक पूर्णार्घ्य एवं पाँचवीं आर्यिका पूजा में 13 अर्घ्य एक पूर्णार्घ्य है, पाँचों पूजाओं की पाँचों जयमालाओं में तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रंथों के आधार से उन-उन पूजाओं का सार ही भर दिया है और अन्त में बड़ी जयमाला में समवसरण का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। ऐसे अचिन्त्य महिमाशाली इस विधान के द्वारा आप सब जिनेन्द्र भक्ति करते हुए महान पुण्य का संचय करें और एक दिन साक्षात् समवसरण की प्राप्ति करने में सफल हों, यही मंगलकामना है।

आद्य वक्तव्य

–आर्यिका चन्दनामती

भगवान ऋषभदेव इस कर्मयुग के प्रथम तीर्थंकर थे। उन्होंने अयोध्या में जन्म लेकर प्रजा को असि-मसि आदि षट्क्रियाएँ बताकर जीवन जीने की कला सिखाई पुनः राज्य संचालित करके प्रयाग में जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली और एक हजार वर्ष की तपस्या के पश्चात् उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। उसके पश्चात् उन्होंने अपनी दिव्यध्वनि से जगत के जीवों को सम्बोधन प्रदान किया और आयु के अंत में कैलाश पर्वत से कर्मों का नाश करके मोक्षधाम प्राप्त कर लिया था। उनके पश्चात् अजितनाथ से लेकर महावीर पर्यन्त 24 तीर्थंकर भगवान हुए और उन सभी के पाँचों कल्याणक इन्द्र-देवताओं ने आकर ऋषभदेव के समान ही मनाये थे।

उन सभी चौबीसों भगवन्तों की महिमा जैन शास्त्रों में खूब वर्णित है, फिर भी न जाने क्यों, वर्तमान के इतिहासकार पाठ्य पुस्तकों में भगवान महावीर को जैनधर्म का संस्थापक लिखने लगे। उनकी भ्रामक बातों का निराकरण करने और शास्त्रीय सत्य तथ्य को उजागर करने की भावना से पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने पिछले 20 वर्षों से अथक प्रयास करके भगवान ऋषभदेव के प्रचार-प्रसार का व्यापक अभियान प्रारंभ किया, जिसके फलस्वरूप कतिपय पाठ्य पुस्तकों में संशोधन हुए हैं कि जैनधर्म में 24 तीर्थंकर हैं.....आदि।

प्रभावना की इसी शृँखला में इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ-सन् 2001 में भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञानकल्याणक भूमि प्रयाग-इलाहाबाद में बनारस-हाइवे पर ''तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली'' नाम के तीर्थ का निर्माण-विकास हुआ। अत्यन्त मनोहारी उस तीर्थ पर सम्पूर्ण प्राचीन इतिहास दर्शाया गया है। तीर्थ निर्माण के बारह वर्ष की पूर्णता पर वहाँ भगवान ऋषभदेव का द्वादशवर्षीय महाकुंभ मस्तकाभिषेक महोत्सव 3 मार्च 2013 को हो रहा है तथा फाल्गुन शुक्ला ग्यारस-7 मार्च 2013 को भगवान का केवलज्ञानकल्याणक दिवस है अतः इस अवसर पर पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा प्रस्तुत यह ''ऋषभदेव समवरण विधान'' प्रकाशित होकर भक्तों के सम्मुख आ रहा है। इस विधान को करके आप सभी मनवांछित फल की प्राप्ति करें, यही मंगल कामना है।

विधान की रचयित्री, परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान–टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.
जन्मतिथि–आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)
जाति–अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र**–गोयल, **नाम**–कु. मैना
माता-पिता–श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन
आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत–ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन
क्षुल्लिका दीक्षा–चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम– क्षुल्लिका वीरमती
आर्यिका दीक्षा–वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।
साहित्यिक कृतित्व–अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 300 ग्रंथों की लेखिका।
डी.लिट्. की मानद उपाधि–सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।
तीर्थ निर्माण प्रेरणा–हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा- भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमामहावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थइत्यादि।
महोत्सव प्रेरणा–पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डलविधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**
शैक्षणिक प्रेरणा–'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।
रथ प्रवर्तन प्रेरणा–जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

—जीवन प्रकाश जैन (प्रबंध सम्पादक)

ईसवी सन् 1972 में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से स्थापित उक्त संस्था के द्वारा जम्बूद्वीप रचना के निर्माण हेतु मेरठ (उ.प्र.) के ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर में नशिया मार्ग पर जुलाई 1974 में एक भूमि क्रय की गई, जहाँ सर्वप्रथम 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की अवगाहना प्रमाण सात हाथ (सवा दस फुट) ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान करने हेतु फरवरी 1975 में एक लघुकाय जिनालय का निर्माप किया गया, जो सन् 1990 में एक अनोखे 'कमल मंदिर' के रूप में निर्मित हुआ है। यहाँ विराजमान कल्पवृक्ष भगवान महावीर से यह अतिशय क्षेत्र निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर होता हुआ नित्य नये निर्माणों के द्वारा संसार में अद्वितीय पर्यटन स्थल के रूप में प्रसिद्ध हुआ है। इस प्रतिमा के दर्शन करके भक्तगण अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं।

जम्बूद्वीप निर्माण का प्रथम चरण—जुलाई सन् 1974 में रखी गई नींव के आधार पर जम्बूद्वीप के बीचोंबीच में सर्वप्रथम आगम वर्णित सुमेरुपर्वत (101 फुट ऊँचा) का निर्माण अप्रैल सन् 1979 में एवं सन् 1985 में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण पूर्ण हुआ। सोलह जिनमंदिरों से समन्वित उस सुमेरुपर्वत के अंदर से निर्मित 136 सीढ़ियों से चढ़कर श्रद्धालु भक्त समस्त भगवन्तों के दर्शन करके जब सबसे ऊपर पाण्डुकशिला के निकट पहुँचते हैं, तो नीचे जम्बूद्वीप रचना के सभी नदी, पर्वत, मंदिर, उपवन आदि दृश्यों के साथ-साथ हस्तिनापुर के आसपास के सुदूरवर्ती ग्रामों का भी प्राकृतिक सौंदर्य देखकर फूले नहीं समाते हैं।

यात्री सुविधा—हस्तिनापुर तीर्थ में जम्बूद्वीप स्थल के पूरे परिसर में संस्थान द्वारा कार्यालय का सक्रिय संचालन किया जाता है। वहाँ यात्रियों के ठहरने हेतु आधुनिक सुविधायुक्त 200 कमरे, 50 से अधिक डीलक्स फ्लैट एवं अनेकों गेस्ट हाउस (बंगले) बने हुए हैं। इसके साथ ही यहाँ सुन्दर भोजनालय है जहाँ यात्रियों को सुविधापूर्वक शुद्ध भोजन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त 2 किमी. दूर हस्तिनापुर सेन्ट्रल टाउन में सरकारी अस्पताल, डाकखाना, बाजार, इंटरकालेज तथा अन्य शिक्षण संस्थाएँ आदि सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

हस्तिनापुर कैसे पहुँचे ?—भारत की राजधानी दिल्ली से 110 किमी. पश्चिमी उत्तरप्रदेश में जिला-मेरठ से 40 किमी. दूर हस्तिनापुर तीर्थ है। राजधानी दिल्ली से हस्तिनापुर के लिए अंतर्राज्यी बस अड्डे अथवा आनंद विहार बस अड्डे से उत्तरप्रदेश रोडवेज तथा डी.टी.सी. बसों की निरंतर सेवा उपलब्ध है। मेरठ से भी प्रति आधे घंटे के अंतराल से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर पहुँचने हेतु रोडवेज की बसें सुलभता के साथ उपलब्ध रहती हैं। 'जम्बूद्वीप' के नाम से ये बसें चलती हैं जो सीधे जम्बूद्वीप के सामने ही रुकती हैं और जम्बूद्वीप से ही मेरठ, दिल्ली, तिजारा आदि यात्रा हेतु बसें उपलब्ध रहती हैं। दिल्ली और मेरठ के बीच रेल सेवा भी है। देश-विदेश के यात्रीगण हस्तिनापुर पधारकर इस धरती का स्वर्ग मानी जाने वाली 'जम्बूद्वीप रचना' के दर्शन करें और मानसिक शांति का अनुभव करते हुए मनवांछित फल प्राप्त करें, यही मंगलकामना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, रोशनावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कॉनट प्लेस, नई दिल्ली।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. स्व. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., श्री अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
20. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
21. श्रीमती आदर्श जैन ध.प. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
22. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)।

ऋषभदेव समवसरण विधान

मंगल स्तोत्र

-अनुष्टुप् छंद-

मंगलमादिनाथोऽर्हन् प्रथमस्तीर्थकृज्जिनः।
वृषभः पुरुदेवाख्यो मंगलं ऋषभेश्वरः।।1।।

-शार्दूलविक्रीडित छंद-

या कैवल्यविभा निहंति भविनां ध्वांतं मनःस्थं महत्।
सा ज्योतिः प्रकटीक्रियान्मम मनो-मोहान्धकारं हरेत्।।
या आश्रित्य वसंति द्वादशगणा वाणीसुधापायिनः।
तास्तीर्थेशसभा अनंतसुखदाः कुर्वन्तु नो मंगलम्।।2।।

ये त्रिंशत् चतुरुत्तरा अतिशया ये प्रातिहार्या वसुः।
येऽप्यानन्त्यचतुष्टया गुणमया दोषाः किलाष्टादश।।
ये दोषैः रहिता गुणैश्च सहिता देवाश्चतुर्विंशतिः।
ते सर्वस्वगुणा अनंतगुणिताः कुर्वन्तु नो मंगलम्।।3।।

ये तीर्थंकरशिष्यतामुपगताः सर्वर्द्धिसिद्धीश्वराः।
ये ग्रथ्नंति किलांगपूर्वमयसच्छास्त्रं ध्वनेराश्रयात्।।

ये ते विघ्नविनाशका गणधरास्तेषां समस्तर्द्धयः।
ते शांतिं परमां च सर्वसिद्धिं कुर्वन्तु नो मंगलम्।।4।।

अष्टाविंशतिमूलवृत्तसहिता उत्तरगुणैर्मंडिताः।
पंचाचारपरायणाः प्रतिक्षणं स्वाध्यायमातन्वते।।
आचार्यादिमुनीश्वराः बहुविधा ध्यानैकलीना मुदा।
ते सर्वेऽपि दिगंबरा मुनिगणाः कुर्वन्तु नो मंगलम्।।5।।

लेश्याशुक्लमिव प्रशस्तमनसः शुक्लैकवस्त्रावृताः।
लज्जाशीलविशुद्धसर्वचरणाः स्वाध्यायशीलाः सदा।।
याः साध्व्यश्च महाव्रतांगशुचयो वंद्याः सुरेन्द्रैरपि।
ताः सर्वाः अमलार्यिकाः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मंगलम्।।6।।

इन्द्राः अष्टसहस्रनामकथनैश्चक्रुः स्तुतिं भक्तितः।
तैरन्वर्थकनामभिर्भविजना निघ्नंति पापं महत्।।
तेऽप्यष्टोर्ध्वसहस्रलक्षणधरं देहं लभेरन् जनाः।
नामान्यष्टसहस्रकाणि सततं कुर्वन्तु नो (वो) मंगलम्।।7।।

यद् द्रव्यार्थिकतोऽप्यनादिनिधनं पर्यायतः साद्यपि।
जैनेद्रं वरशासनं शिवकरं तीर्थेश्वरैः वर्तितम्।।
कुर्यात् ज्ञानमतिं श्रियं वितनु मे नंद्याच्च जीयाच्चिरम्।
श्रीतीर्थंकरशासनानि सततं कुर्वन्तु नो (वो) मंगलम्।।8।।

-अनुष्टुप् छंद-

अर्हंतो मंगलं कुर्युः, सिद्धाः कुर्युश्च मंगलम्।
आचार्याः पाठकाश्चापि, साधवो मम मंगलम्।।9।।

इति जिनयज्ञप्रतिज्ञापनाय पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

पूजा नं.-1

समवसरण पूजा

अथ स्थापना-अडिल्ल छंद

समवसरण जिन खिले कमलसम शोभता।
गंधकुटी है मानो उसमें कर्णिका।।
ऋषभदेव के समवसरण की अर्चना।
मनवांछित फल देती प्रभु की वंदना।।1।।

-दोहा-

अनंत चतुष्टय के धनी, तीर्थंकर आदीश।
आह्वानन कर मैं जजूँ, नमूँ नमूँ नत शीश।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडित श्रीऋषभदेवतीर्थंकर! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडित श्रीऋषभदेवतीर्थंकर! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडित श्रीऋषभदेवतीर्थंकर! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथ अष्टक –चाल-नंदीश्वर पूजा

जिनवचसम शीतल नीर, कंचन भृंग भरूँ।
मैं पाऊँ भवदधि तीर, जिनपद धार करूँ।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन तनु सम सुरभित गंध, कंचन पात्र भरूँ।
मैं चर्चूं जिनपद पद्म, भव संताप हरूँ।।

जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन ध्वनि सम अमल अखंड, तंदुल थाल भरूँ।
मैं पुंज धरूँ जिन अग्र, सौख्य अखंड भरूँ।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन यश सम सुरभित पुष्प, चुन चुन कर लाऊँ।
जिन आगे पुष्प समर्प्य, निज के गुण पाऊँ।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय कामबाण-विध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन वच अमृत के पिंड, सदृश चरु लाऊँ।
जिनवर के निकट चढ़ाय, समरस सुख पाऊँ।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।5।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन तनु की कांति समान, दीपक ज्योति धरे।
मैं करूँ आरती नाथ, मम सब आर्त हरे।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।6।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन यश सम सुरभित धूप, खेऊँ अग्नी में।
हो अशुभ कर्म सब भस्म, पाऊँ निज सुख मैं।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।7।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवच सम मधुर रसाल, श्रीफल फल बहुते।
जिन निकट चढ़ाऊँ आज, अतिशय भक्तियुते।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।8।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन आदि मिलाय, अर्घ बनाय लिया।
निज पद अनर्घ के हेतु, आप चढ़ाय दिया।।
जिन समवसरण की भूमि, अतिशय विभव धरे।
जो पूजें जिनपदपद्म, वे निज विभव भरें।।9।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

शांतीधारा मैं करूँ, जिनवर पद अरविंद।
आत्यंतिक शांती मिले, प्रगटे सौख्य अनिंद।।10।।

शांतये शांतिधारा।

लाल श्वेत पीतादि बहु, सुरभित पुष्प गुलाब।
पुष्पाँजलि से पूजते, हो निजात्म सुख लाभ।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ्य

–सोरठा–

जिनवर चरण सरोज, पुष्पांजलि से पूजते।
मिटे सर्व दुख शोक, सुख संपति होवे सदा।।

इति मण्डलस्योपरि मानस्तम्भेषु पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

–रोला छंद–

वृषभदेव के समवसरण में चारों दिश में।
वीथी दो दो कोश चौड़ी उन पूरब में।।
मानस्तंभ अपूर्व, चारों दिश जिनप्रतिमा।
पूजूँ अर्घ चढ़ाय, होवे सौख्य अनुपमा।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री ऋषभदेवसमवसरणस्थितपूर्वदिक्मानस्तम्भस्य चतुर्दिक्चतुः जिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समवसरण में दक्षिण दिश में शोभ रहा है।
मानस्तंभ विचित्र मुनिगण पूज्य कहा है।।
उसमें शिखर समीप चहुँदिश जिनप्रतिमायें।
पूजूँ अर्घ समर्प्य अनुपम सौख्य दिलाएँ।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री ऋषभदेवसमवसरणस्थितदक्षिणदिक्मानस्तम्भ चतुर्दिक्चतुः जिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम दिश की महा, गलि में रत्नविनिर्मित।
मानस्तंभ जिनेश, का मिथ्यात्वी मदहृत्।।
उसमें शिखर समीप चहुँदिश जिनप्रतिमायें।
पूजूँ अर्घ समर्प्य अनुपम सौख्य दिलाएँ।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री ऋषभदेवसमवसरणस्थितपश्चिमदिक्मानस्तम्भ चतुर्दिक्चतुः जिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर दिश में तुंग, मानस्तंभ विराजे।
जो वंदें धर प्रीत उनके पातक भाजें।।

उसमें शिखर समीप चहुँदिश जिनप्रतिमायें।
पूजूँ अर्घ समर्प्य अनुपम सौख्य दिलाएँ।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री ऋषभदेवसमवसरणस्थितउत्तरदिङ्मानस्तम्भचतुर्दिक्चतुर्जिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

चैत्यप्रासाद भूमि अर्घ्य

–दोहा–

भूमि प्रथम जिनगृह धरे, हरे सकल संताप।
पुष्पांजलि से पूजते, भक्त बनें निष्पाप।।

इति मंडलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

–नरेन्द्र छंद–

वृषभदेव के समवसरण में, चैत्य महल भू प्रथमा।
पाँच पाँच महलों के अंतर, इक इक जिनगृह सुषमा।।
जिनमंदिर जिनप्रतिमा पूजूँ, मिटे सर्व दुख आपत्।
पाँच परावर्तन से छूटूँ, मिले स्वात्मसुख संपत्।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री ऋषभदेवसमवसरणस्थितचैत्यप्रासादभूमिसंबंधिजिनमंदिरजिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

खातिका भूमि अर्घ्य

–सोरठा–

द्वितिय खातिका भूमि, चारों तरफी घिर रही।
कुसुमांजली समीप, करके पूजूँ जिनचरण।।

इति मंडलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

–नरेन्द्र छंद–

प्रथम भूमि के आगे वेदी, चारों तरफी घेरे।
चारों गोपुर द्वारों से युत, इस पर बने कंगूरे।।

उसके आगे बनी खातिका, भूमी समवसरण में।
पूजूँ नितप्रति अर्घ चढ़ाकर, जिनवर समवसरण मैं।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं खातिकाभूमिमंडितश्रीऋषभदेवसमवसरणाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

लता भूमि अर्घ्य

–सोरठा–

चिच्चिंतामणिरत्न, चिंतित फल देवो मुझे।
मिलें शीघ्र त्रयरत्न, पुष्पांजलि से पूजते।।

इति मंडलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

छंद–हे दीन बंधु.....

है तीसरी भूमी लता में पुष्प लतायें।
जिनमें भ्रमर गुंजारते जिनराज गुण गायें।।
बल्लीवनी फूले कुसुम से सर्वमन हरे।
हम पूजते जिनवर विभव को निज विभव भरें।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं लतावनभूमिमंडितश्रीऋषभदेवसमवसरणाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

उपवन भूमि अर्घ्य

–सोरठा–

समवसरण प्रभु आप, त्रिभुवन की लक्ष्मी धरे।
पुष्पांजली समर्प, चैत्यवृक्ष जिन पूजहूँ।।1।।

इति मंडलस्योपरिउपवनभूमिचैत्यवृक्षस्थाने पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

–गीता छंद–

वृषभेश जिनके समवसृति में वनधरा में पूर्वदिश।
वन है अशोक कहा वहाँ तरु हैं कुसुम पत्रों भरित।।

उन मध्य एक अशोक तरु में चार दिश जिनमूर्तियाँ।
जैवंत होवें नित्य ये चिंतामणी जिनमूर्तियाँ।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री ऋषभदेवसमवसरणस्थितउपवनभूमिपूर्वदिक्अशोक-चैत्यवृक्षसंबंधि-चतुर्मानस्तम्भसहितचतुर्जिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वृषभेश जिनके समवसृति दक्षिण दिशी वनभूमि में।
तरु सप्तछद शोभें बहुत फल पुष्प पत्रों से घने।।
उन मध्य सप्तच्छद तरू में चार दिश जिनमूर्तियाँ।
जैवंत होवें नित्य ये चिंतामणी जिनमूर्तियाँ।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री ऋषभदेवसमवसरणस्थितउपवनभूमिदक्षिणदिक्सप्तच्छद-चैत्यवृक्ष-संबंधिचतुर्मानस्तम्भसहितचतुर्जिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वृषभेष प्रभु के समवसृति में पश्चिमी वनभूमि में।
चंपक तरू शोभें बहुत सुरभित कुसुम पत्ते घने।।
उन मध्य चंपक चैत्य तरु में चार दिश जिनमूर्तियाँ।
जैवंत होवें नित्य ये चिंतामणी जिनमूर्तियाँ।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री ऋषभदेवसमवसरणस्थितउपवनभूमिपश्चिमदिक्चंपक-चैत्यवृक्षसंबंधि-चतुर्मानस्तम्भसहितचतुर्जिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री आदिनाथ समवसरण में उत्तरी वनभूमि में।
तरु आम्र के फल पुष्प पत्तों युत वहाँ शोभें घने।।
उन मध्य आम्र सुचैत्यतरु में चार दिश जिनमूर्तियाँ।
जैवंत होवें नित्य ये चिंतामणी जिनमूर्तियाँ।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री ऋषभदेवसमवसरणस्थितउपवनभूमिउत्तरदिक्आम्र-चैत्यवृक्षसंबंधि-चतुर्मानस्तम्भसहितचतुर्जिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

ध्वजाभूमि अर्घ्य

–दोहा–

परमानंद पियूष घन, वर्षा करें जिनंद।
पुष्पांजलि से पूजते, मिले सर्व सुख कंद।।1।।

इति मंडलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

–स्रग्विणी छंद–

जो समोशर्ण में नाथ को पूजते।
वे जनम मृत्यु के दुःख से छूटते।।
पाँचवीं ध्वज धरा शोभती है वहाँ।
मैं जजूँ जिन समोसर्ण को नित यहाँ।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं ध्वजभूमिमंडितश्रीऋषभदेवसमवसरणाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

कल्पवृक्ष भूमि अर्घ्य

–सोरठा–

नित्य निरंजन सिद्ध, परमहंस परमातमा।
पाऊँ निजगुण सिद्धि, पुष्पांजली चढ़ाय के।।1।।

इति मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

चाल–हे दीनबंधु

श्री आदिनाथ का समोसरण विशाल हैं।
ध्वजभू को वेढ़ रजतमयी तृतिय साल[1] है।।
सिद्धार्थ नमेरू तरू है कल्पभूमि में।
पूजूँ सदा चउसिद्ध की प्रतिमा प्रसिद्ध मैं।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितकल्पवृक्षभूमिपूर्वदिक्नमेरुसिद्धार्थ-वृक्षमूलभागविराजमानचतुर्मानस्तम्भसहितचतुःसिद्धप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दक्षिण सुकल्प भूमि में मंदार तरू है।
उस मूल में चतुर्दिशा में सिद्धबिंब हैं।।
प्रत्येक बिंब के समक्ष मानथंभ हैं।
पूजूँ सदा चउसिद्ध की प्रतिमा अनिंद हैं।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितकल्पवृक्षभूमिदक्षिणदिक्मंदार-सिद्धार्थवृक्षमूलभागविराजमानचतुर्मानस्तम्भसहितचतुःसिद्धप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

---

1. परकोटा। 2. संतानक नाम का वृक्ष।

पश्चिम सुकल्पभूमि में संतानकांघ्रिपा[1]।
सिद्धार्थ वृक्ष है इसी के चार हों दिशा।।
एकेक सिद्ध बिंब साधु वृंद वंद्य हैं।
पूजूँ सदा इन्हें ये चक्रवर्ति वंद्य हैं।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितकल्पवृक्षभूमिपश्चिमदिक्संतानक-सिद्धार्थवृक्षमूलभागविराजमानचतुर्मानस्तम्भसहितचतुःसिद्धप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर सुकल्प भू में पारिजात वृक्ष है।
ये सिद्ध की प्रतिमाओं से सिद्धार्थ सार्थ है।।
जो इनको जजें उनके सर्वकार्य सिद्ध हैं।
पूजं सदा चउसिद्ध की प्रतिमा अनिंद हैं।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितकल्पवृक्षभूमिउत्तरदिक्पारिजात-सिद्धार्थवृक्षमूलभागविराजमानचतुर्मानस्तम्भसहितचतुःसिद्धप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

भवनभूमि अर्घ्य

–सोरठा–

पुण्यराशि जिनबिंब, अतिशय महिमा को धरें।
जो पूजें हर डिंभ[2], वो न भ्रमें भव वन विषे।।1।।

इति मंडलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

–नरेन्द्र छंद–

श्री वृषभदेव की पूर्व गली में, नव स्तूप बखाने।
उसमें जिन सिद्धों की प्रतिमा, भविजन के अघ हाने।।
नव पदार्थ की श्रद्धा करके, सम्यक्रत्न धरूँ मैं।
नव केवललब्धी हेतू ही, नितप्रति यजन करूँ मैं।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितभवनभूमिप्रथमवीथीसंबंधिनवस्तूप-मध्यविराजमानसर्वजिनसिद्धप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

1. संतानक नाम का वृक्ष। 2. मायाचारी।

समवसरण की दक्षिण वीथी, नव स्तूप खड़े हैं।
उनमें जिनप्रतिमा को पूजत, धन जन सुयश बढ़े हैं।।
नव पदार्थ की श्रद्धा करके, सम्यक्रत्न धरूँ मैं।
नव केवललब्धी हेतू ही, नितप्रति यजन करूँ मैं।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितभवनभूमिद्वितीयवीथीसंबंधिनवस्तूप-मध्यविराजमानसर्वजिनसिद्धप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समसरण में तृतीय गली में, नवस्तूप मनोहर।
गणधर मुनिगण जिनप्रतिमा को, वंदत सर्व तमोहर।।
नव पदार्थ की श्रद्धा करके, सम्यक्रत्न धरूँ मैं।
नव केवललब्धी हेतू ही, नितप्रति यजन करूँ मैं।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितभवनभूमितृतीयवीथीसंबंधिनवस्तूप-मध्यविराजमानसर्वजिनसिद्धप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवनभूमि चौथी वीथी में, नव स्तूप दिपे हैं।
पूजत ही दुख दारिद संकट, तन मन व्याधि खिपे[1] हैं।।
नव पदार्थ की श्रद्धा करके, सम्यक्रत्न धरूँ मैं।
नव केवललब्धी हेतू ही, नितप्रति यजन करूँ मैं।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितभवनभूमिचतुर्थवीथीसंबंधिनवस्तूप-मध्यविराजमानसर्वजिनसिद्धप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

श्रीमंडप भूमि अर्घ्य

–सोरठा–

त्रिभुवन का साम्राज्य, प्राप्त किया कर्मारि हन।
मिले निजातम राज्य, पुष्पांजलि से पूजहूँ।।1।।

इति मंडलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

–शंभु छंद–

श्रीवृषभदेव का समवसरण, बारह योजन[2] मुनि गाते हैं।
उसमें श्रीमंडपभूमी में, बारह कोठे बन जाते हैं।।

1. नष्ट होती है। 2. एक योजन चार कोस का होता है।

मुनि आर्या देव देवियाँ नर, पशुगण अगणित वहाँ बैठे हैं।
हम पूजें अर्घ चढ़ा करके, ये भव भव के दुख मेटे हैं।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमंडपभूमिमंडितश्रीऋषभदेवसमवसरणाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

प्रथम कटनी अर्घ्य

–सोरठा–

धर्मचक्र चमकंत, तिहुंजग को उद्योतते।
पुष्पांजलि अर्पंत, पूजत भेद विज्ञान हो।।1।।

इति मंडलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

–नाराच छंद–

समोसरण जिनेश आदिनाथ का विशाल है।
सुपीठ उपरि धर्मचक्र सहस रश्मि जाल है।।
जिनेन्द्र के विहार में सुअग्र अग्र ये चलें।
सहस्रआर धर्मचक्र पूजहूँ सदा भले।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितप्रथमकटनी-उपरिपूर्वदिक्धर्मचक्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनेंद्र आदिनाथ पीठ दाहिनी दिशी दिपे।
सुधर्मचक्र भव्य के हजार पाप को खिपे।।
जिनेन्द्र के विहार में सुअग्र अग्र ये चलें।
सहस्रआर धर्मचक्र पूजहूँ सदा भले।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितप्रथमकटनी-उपरिदक्षिणदिक्-धर्मचक्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समोसरण जिनेश के सुपीठ पे अपर दिशा।
सुधर्मचक्र भक्त के हजार दोष टालता।।
जिनेन्द्र के विहार में सुअग्र अग्र ये चलें।
सहस्रआर धर्मचक्र पूजहूँ सदा भले।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितप्रथमकटनी-उपरिपश्चिमदिक्-धर्मचक्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनेन्द्र आदिनाथ के हि उत्तरीय पीठ पे।
सुयक्ष शीश पे विराजमान चक्र बहु दिपे।।
जिनेन्द्र के विहार में सुअग्र अग्र ये चलें।
सहस्रआर धर्मचक्र पूजहूँ सदा भले।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितप्रथमकटनी-उपरिउत्तरदिक्-धर्मचक्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

द्वितीय कटनी अर्घ्य

–सोरठा–

महाध्वजा के खंभ, द्वितिय पीठ पर हैं खड़े।
यजन हेतु अठ द्रव्य, वहीं मिले जन पूजते।।1।।

इति मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

–स्रग्विणी छंद–

आदि तीर्थेश के श्री समोशर्ण में।
हैं द्वितीय पीठ पे सीढ़ियाँ दिक्क[1]में।।
पूजहूँ मैं ध्वजा आठ भक्ती भरे।
सिद्ध के आठ गुण सम धवल फरहरें।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभजिनसमवसरणस्थितद्वितीयकटनी-उपरिअष्टअष्ट-महाध्वजाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

तृतीय कटनी अर्घ्य

–सोरठा–

चंदन अगर सुगंध, रत्न दीप धूपादि से।
गंधकुटी मुनि वंद्य, कुसुमांजलि कर पूजहूं।।

इति मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

1. चार दिशा में।

–गीता छंद–

सब रत्नमय यह पीठ सुंदर देवनिर्मित तीसरा।
श्री आदिनाथ जिनेश का यह शोभता अतिशय भरा।।
वर ज्ञान आदिक क्षायिकी मिल जाएं केवल लब्धियां।
जिन गंधकुटि को पूजहूँ मिल जाएं आतम सिद्धियाँ।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री ऋषभदेवसमवसरणस्थिततृतीयकटनी-उपरिगंधकुट्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–पूर्णार्घ्य-नरेन्द्र छंद–

समवसरण में आठ भूमियाँ, त्रय कटनी सुंदर हैं।
गंधकुटी में सिंहासन पर, तिष्ठें नाथ अधर हैं।।
इन सबमें जिनप्रतिमा पूजूँ, वंदन करूँ रुची से।
पूर्णार्घ्य से जिनवर पूजत, स्वात्मसिद्धि भक्ती से।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिप्राप्ताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

जाप्य-**ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिविभूषिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय नमः।**

(108 बार या 9 बार पुष्प या पीले तंदुल से जाप्य करें)

जयमाला

–दोहा–

चिन्मय चिंतामणि प्रभो, गुण अनंत की खान।
समवसरण वैभव सकल, वह लवमात्र समान।।1।।

–शंभुछंद–

जय जय तीर्थंकर क्षेमंकर, तुम धर्मचक्र के कर्ता हो।
जय जय अनंतदर्शन सुज्ञान, सुखवीर्य चतुष्टय भर्त्ता हो।।
जय जय अनंत गुण के धारी, प्रभु तुम उपदेश सभा न्यारी।
सुरपति की आज्ञा से धनपति रचता है त्रिभुवन मनहारी।।2।।
प्रभु समवसरण गगनांगण में, बस अधर बना महिमाशाली।
यह इंद्र नीलमणि रचित गोल आकार बना गुणमणिमाली।।

सीढ़ी इक एक हाथ ऊँची, चौड़ी सब बीस हजार बनी।
नर बाल वृद्ध लूले लंगड़े, चढ़ जाते सब अतिशायि घनी।।3।।
पहला परकोटा धूलिसाल, बहुवर्ण रत्न निर्मित सुंदर।
कहिं पद्मराग कहिं मरकतमणि, कहिं इन्द्रनीलमणि से मनहर।।
इसके अभ्यंतर चारों दिश, हैं मानस्तंभ बने ऊँचे।
ये बारह योजन से दिखते[1], जिनवर से द्विदश गुणे ऊँचे।।4।।
इनमें चारों दिश जिनप्रतिमा उनको सुरपति नरपति यजते।
ये सार्थक नाम धरें दर्शन से मानो मान गलित करते।।
इस समवसरण के चार कोट अरु पाँच वेदिकायें ऊँची।
इनके अंतर में आठ भूमि फिर प्रभु की गंधकुटी ऊँची।5।।
इस धूलिसाल अभ्यंतर में है भूमि चैत्य प्रासाद प्रथम।
एकेक जैनमंदिर अंतर से पाँच-पाँच प्रासाद सुगम।।
चारों गलियों में उभय तरफ दो दोय नाट्यशालायें हैं।
अभिनय करतीं जिनगुण गातीं सुर भवनवासि कन्यायें हैं।।6।।
फिर वेदी वेढ़ रही ऊँची गोपुर द्वारों से युक्त वहाँ।
द्वारों पर मंगलद्रव्य निधी ध्वज तोरण घंटा ध्वनी महा।।
फिर आगे खाई स्वच्छ नीर से भरी दूसरी भूमी है।
फूले कुवलय कमलों से युत हंसों के कलरव की ध्वनि है।।7।।
फिर दूजी वेदी के आगे तीजी है लताभूमि सुन्दर।
बहुरंग बिरंगे पुष्प खिले जो पुष्पवृष्टि करते मनहर।।
फिर दूजा कोट बना स्वर्णिम, गोपुर द्वारों से मन हरता।
नवनिधि मंगल घट धूप घटों युत में प्रवेश करती जनता।।8।।
आगे उद्यान भूमि चौथी चारों दिश बने बगीचे हैं।
क्रम से अशोक वन सप्तपर्ण चंपक अरु आम्र तरू के हैं।।
प्रत्येक दिशा में एक एक तरु चैत्यवृक्ष अतिशय ऊँचे।
इनमें जिनप्रतिमा प्रातिहार्ययुत चार चार मणिमय दीखें।।9।।

---

1. हरिवंशपुराण।

इसके आगे वेदी सुन्दर फिर ध्वजाभूमि ध्वज से शोभे।
फिर रजतवर्णमय परकोटा गोपुर द्वारों से युत शोभे।।
फिर कल्पवृक्ष भूमी छट्ठी दशविध के कल्पवृक्ष इसमें।
प्रतिदिश सिद्धार्थ वृक्ष चारों हैं सिद्धों की प्रतिमा उनमें।।10।।
चौथी वेदी के बाद भवनभूमी सप्तमि के उभय तरफ।
नव नव स्तूप रत्न निर्मित, उनमें जिनवर प्रतिमा सुखप्रद।।
परकोटा स्फटिकमयी चौथा मरकत मणि गोपुर से सुन्दर।
उस आगे श्रीमंडप भूमी बारह कोठों से जनमनहर।।11।।
फिर पंचम वेदी के आगे त्रय कटनी सुन्दर दिखती है।
पहली कटनी पर यक्ष शीश पर धर्मचक्र चारों दिश हैं।।
दूजी कटनी पर आठ महाध्वज नवनिधि मंगल द्रव्य धरें।
तीजी कटनी पर गंधकुटी पर जिनवर दर्शन पाप हरें।।12।।
जय जय जिनवर सिंहासन पर चतुरंगुल अधर विराज रहे।
जय जय जिनवर की दिव्यध्वनी सुनकर सब भविजन तृप्त भये।।
सब जातविरोधी प्राणीगण, आपस में मैत्री भाव धरें।
जो पूजें ध्यावें गुण गावें वे जिनगुण संपति प्राप्त करें।।13।।

–दोहा–

चतुर्मुखी ब्रह्मा तुम्हीं, ज्ञान व्याप्त जग विष्णु।
देवों के भी देव हो, महादेव अरि जिष्णु।।14।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पाँजलिः।

–नरेन्द्र छंद–

ऋषभदेव के समवसरण को, जो जन पूजें रुचि से।
मनवांछित फल को पा लेते, सर्व दुखों से छुटते।।
धर्मचक्र के स्वामी बनते, तीर्थंकर पद पाते।
केवल 'ज्ञानमती' किरणों से भविमन ध्वांत नशाते।।1।।

।।इत्याशीर्वादः।।

पूजा नं.-2

तीर्थंकर गुण पूजा

अथ स्थापना –शंभु छंद

प्रभु पंचकल्याणक के स्वामी, तीर्थंकर पद के धारी हैं।
श्री ऋषभदेव का समवसरण, इसकी शोभा अति न्यारी है।।
यद्यपि जिनवर के गुण अनंत, फिर भी छ्यालिस गुण विख्याते।
उनका आह्वानन कर पूजें, वे मेरे सब गुण विकसाते।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडितश्रीऋषभदेव तीर्थंकर! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडितश्रीऋषभदेव तीर्थंकर! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडितश्रीऋषभदेव तीर्थंकर! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

–अथ अष्टक–

चाल –हे दीनबंधु.....।

सरयू नदी का नीर स्वर्णभृंग में भरूँ।
जिननाथ पाद पद्म में त्रयधार मैं करूँ।।
तीर्थेश गुण समूह की मैं अर्चना करूँ।
निजगुण समूह हेतु आज प्रार्थना करूँ।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडितश्रीऋषभदेवतीर्थंकराय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशर कपूर को घिसा चंदन सुरभि लिया।
जिननाथ चरण चर्च मैं मन को सुवासिया।।
तीर्थेश गुणसमूह की मैं अर्चना करूँ।
निजगुण समूह हेतु आज प्रार्थना करूँ।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडितश्रीऋषभदेवतीर्थंकराय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल अखंड शालि धोय थाल में भरे।
जिन अग्र पुंज धारते अखंड सुख भरें।।
तीर्थेश गुणसमूह की मैं अर्चना करूँ।
निजगुण समूह हेतु आज प्रार्थना करूँ।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडितश्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अक्षतं निर्वपामीतिस्वाहा।

बेला गुलाब केतकी चंपा खिले खिले।
जिनपाद में चढ़ावते सम्यक्त्व गुण मिले।।
तीर्थेश गुणसमूह की मैं अर्चना करूँ।
निजगुण समूह हेतु आज प्रार्थना करूँ।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडितश्रीऋषभदेवतीर्थंकराय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पूड़ी सोहाल मालपुआ थाल भर लिये।
जिन अग्र में चढ़ाय आत्मतृप्ति कर लिये।।
तीर्थेश गुणसमूह की मैं अर्चना करूँ।
निजगुण समूह हेतु आज प्रार्थना करूँ।।5।।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडितश्रीऋषभदेवतीर्थंकराय नैवेद्यं निर्वपामीतिस्वाहा।

मणिदीप में कपूर ज्योति को जलावते।
जिन आरती करंत मोह तम भगावते।।
तीर्थेश गुणसमूह की मैं अर्चना करूँ।
निजगुण समूह हेतु आज प्रार्थना करूँ।।6।।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडितश्रीऋषभदेवतीर्थंकराय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो धूप पात्र में सुगंध धूप खेवते।
उन पाप कर्म भस्म होंय आप सेवते।।
तीर्थेश गुणसमूह की मैं अर्चना करूँ।
निजगुण समूह हेतु आज प्रार्थना करूँ।।7।।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडितश्रीऋषभदेवतीर्थंकराय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

केला अनार आम संतरा मंगा लिया।
जिन अग्र में चढ़ाय सर्वश्रेष्ठ फल लिया।।

तीर्थेश गुणसमूह की मैं अर्चना करूँ।
निज गुणसमूह हेतु आज प्रार्थना करूँ।।8।।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडितश्रीऋषभदेवतीर्थंकराय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीरादि अर्घ लेय श्रेष्ठ रत्न मिलाऊँ।
जिन अग्र में चढ़ाय चित्त कमल खिलाऊँ।।
तीर्थेश गुण समूह की मैं अर्चना करूँ।
निजगुण समूह हेतु आज प्रार्थना करूँ।।9।।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडितश्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

पद्म सरोवर नीर ले, जिनपद धार करंत।
तिहुंजग में मुझ में सदा, करो शांति भगवंत।।10।।

शांतये शांतिधारा।

श्वेत कमल नीले कमल, अतिसुगंध कल्हार।
पुष्पांजलि अर्पण करत, मिले सौख्य भंडार।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ
(चौंतीस अतिशय के 34 अर्घ्य)

–सोरठा–

जिनवर गुणमणि तेज, सर्व लोक में व्यापता।
हो मुझ ज्ञान अशेष, पुष्पांजलि कर पूजहूँ।।1।।

इति मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

–शंभु छंद–

तीर्थंकर प्रभु के जन्म समय से, दश अतिशय सुखदायी हैं।
उनके तनु में नहिं हो पसेव, यह अतिशय गुण मन भायी है।।
मैं पूजूं नित इस अतिशय को, यह सब कलिमल को धोवेगा।
परमानंदामृत पान करा, निज के गुणमणि को देवेगा।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं निःस्वेदत्वसहजातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माता की कुक्षी से जन्में, औदारिक तनु मानव का है।
फिर भी मल मूत्र नहीं तुममें, यह अतिशय पुण्य उदय का है।।
मैं पूजूं नित इस अतिशय को, यह सब कलिमल को धोवेगा।
परमानंदामृत पान करा, निज के गुणमणि को देवेगा।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं निर्मलतासहजातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु तन में श्वेत रुधिर पय सम, यह अतिशय तीर्थंकर के हो।
अतएव मात सम त्रिभुवन जन, पोषण करते उदार मन हो।।
मैं पूजूं नित इस अतिशय को, यह सब कलिमल को धोवेगा।
परमानंदामृत पान करा, निज के गुणमणि को देवेगा।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं क्षीरसमधवलरुधिरत्वसहजातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम संहनन सुवज्रवृषभनाराच कहाता शक्ति धरे।
यह अन्य जनों को सुलभ तथापी तुममें अतिशय नाम धरे।।
मैं पूजूं नित इस अतिशय को, यह सब कलिमल को धोवेगा।
परमानंदामृत पान करा, निज के गुणमणि को देवेगा।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं वज्रऋषभनाराचसंहननसहजातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु तन में एक एक अवयव, सब माप सहित अतिशय सुंदर।
यह समचतुरस्र नाम का ही, संस्थान कहा त्रिभुवन मनहर।।
मैं पूजूं नित इस अतिशय को, यह सब कलिमल को धोवेगा।
परमानंदामृत पान करा, निज के गुणमणि को देवेगा।।5।।

ॐ ह्रीं अर्हं समचतुरस्रसंस्थानसहजातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिभुवन में उपमारहित रूप अतिसुंदर अणुओं से निर्मित।
सुरपति निज नेत्र हजार बना, प्रभु को निरखे फिर भी अतृप्त।।

मैं पूजूं नित इस अतिशय को, यह सब कलिमल को धोवेगा।
परमानंदामृत पान करा, निज के गुणमणि को देवेगा।।6।।

ॐ ह्रीं अर्हं अनुपमरूपसहजातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नव चंपक की उत्तम सुगंध, सम देह सुगंधित प्रभु का है।
यह अतिशय अन्य मनुज तन में नहिं कभी प्राप्त हो सकता है।।
मैं पूजूं नित इस अतिशय को, यह सब कलिमल को धोवेगा।
परमानंदामृत पान करा, निज के गुणमणि को देवेगा।।7।।

ॐ ह्रीं अर्हं सौगंध्यसहजातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ एक हजार आठ लक्षण, प्रभु तन का अतिशय कहते हैं।
यह तीन जगत् में भी उत्तम, अतएव इंद्र सब नमते हैं।।
मैं पूजूं नित इस अतिशय को, यह सब कलिमल को धोवेगा।
परमानंदामृत पान करा, निज के गुणमणि को देवेगा।।8।।

ॐ ह्रीं अर्हं अष्टोत्तरसहस्रशुभलक्षणसहजातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तनु में अनंत[1] बल वीर्य रहे, जन्मत ही यह अतिशय प्रगटे।
अतएव हजार-हजार बड़े कलशों से न्हवन भि झेल सकें।।
मैं पूजूं नित इस अतिशय को, यह सब कलिमल को धोवेगा।
परमानंदामृत पान करा, निज के गुणमणि को देवेगा।।9।।

ॐ ह्रीं अर्हं अनंतबलवीर्यसहजातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हितमित सुमधुर वाणी प्रभु की, जनमन को अतिशय प्रिय लगती।
त्रिभुवन हितकारी भावों से, यह अद्भुत वचन शक्ति मिलती।।
मैं पूजूं नित इस अतिशय को, यह सब कलिमल को धोवेगा।
परमानंदामृत पान करा, निज के गुणमणि को देवेगा।।10।।

ॐ ह्रीं अर्हं प्रियहितमधुरवचनसहजातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

---

1. तिलोयपण्णत्ति पृ. 263।

–नरेन्द्र छंद–

केवल ज्योति प्रगट होती इक दश[1] अतिशय होते हैं।
चारों दिश में सुभिक्ष होवे, चउ चउ सौ कोसों में।।
घाति कर्म के क्षय से अतिशय, मन वच तन से पूजूं।
मुझ में केवलज्ञान सौख्य हो, भव भव दुख से छूटूं।।11।।

ॐ ह्रीं अर्हं गव्यूतिशतचतुष्टयसुभिक्षताकेवलज्ञानातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान प्रगट होते ही जिनवर, गगन गमन करते हैं।
बीस हजार हाथ ऊपर जा, अधर सिंहासन पर हैं।।
घाति कर्म के क्षय से अतिशय, मन वच तन से पूजूं।
मुझ में केवलज्ञान सौख्य हो, भव भव दुख से छूटूं।।12।।

ॐ ह्रीं अर्हं गगनगमनत्वकेवलज्ञानातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु के गमन शरीर आदि से, प्राणी वध नहिं होवे।
करुणासिंधु अभयदाता को, पूजत निर्भय होवें।।
घाति कर्म के क्षय से अतिशय, मन वच तन से पूजूं।
मुझ में केवलज्ञान सौख्य हो, भव भव दुख से छूटूं।।13।।

ॐ ह्रीं अर्हं प्राणिवधाभावकेवलज्ञानातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कोटी पूर्व वर्ष आयू में, कुछ कम ही वर्षों में।
केवलि का उत्कृष्ट काल यह, बिन भोजन है तन में।।
घाति कर्म के क्षय से अतिशय, मन वच तन से पूजूं।
मुझ में केवलज्ञान सौख्य हो, भव भव दुख से छूटूं।।14।।

ॐ ह्रीं अर्हं कवलाहाराभावकेवलज्ञानातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देव मनुज तिर्यंच आदि उपसर्ग नहीं कर सकते।
केवलि प्रभु के कर्म असाता, साता में ही फलते।।

1. तिलोयपण्णत्ति में ग्यारह माने हैं।

घाति कर्म के क्षय से अतिशय, मन वच तन से पूजूं।
मुझ में केवलज्ञान सौख्य हो, भव भव दुख से छूटूं।।15।।

ॐ ह्रीं अर्हं उपसर्गाभावकेवलज्ञानातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समवसरण की गोल सभा में, चहुंदिश प्रभु मुख दीखे।
चतुर्मुखी[1] ब्रह्मा यद्यपि ये, पूर्व उदङ् मुख तिष्ठे।।
घाति कर्म के क्षय से अतिशय, मन वच तन से पूजूं।
मुझ में केवलज्ञान सौख्य हो, भव भव दुख से छूटूं।।16।।

ॐ ह्रीं अर्हं चतुर्मुखत्वकेवलज्ञानातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परमौदारिक पुद्गल तनु भी, छाया नहीं पड़े है।
केवलज्ञान सूर्य होकर भी सबको छांव करे हैं।।
घाति कर्म के क्षय से अतिशय, मन वच तन से पूजूं।
मुझ में केवलज्ञान सौख्य हो, भव भव दुख से छूटूं।।17।।

ॐ ह्रीं अर्हं छायारहितकेवलज्ञानातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नेत्रों की पलकें नहिं झपकें, निर्निमेष दृष्टी है।
जो पूजें वे भव्य लहें तुम, सदा कृपादृष्टी है।।
घाति कर्म के क्षय से अतिशय, मन वच तन से पूजूं।
मुझ में केवलज्ञान सौख्य हो, भव भव दुख से छूटूं।।18।।

ॐ ह्रीं अर्हं पक्ष्मस्पंदरहितकेवलज्ञानातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिभुवन में जितनी विद्या हैं, सबके ईश्वर प्रभु हैं।
जो भवि पूजें वे सब विद्या, अतिशय प्राप्त करे हैं।।
घाति कर्म के क्षय से अतिशय, मन वच तन से पूजूं।
मुझ में केवलज्ञान सौख्य हो, भव भव दुख से छूटूं।।19।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वविद्येश्वरकेवलज्ञानातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

1. भगवान का मुख पूर्व या उत्तर दिशा में ही रहता है फिर भी सभा में सबको अपनी तरफ मुख दिखते हैं। यह चतुर्मुख नाम का अतिशय है।

केश और नख बढ़े न प्रभु के, चिच्चैतन्य प्रभू हैं।
दिव्यदेह को धारण करते, त्रिभुवन एक विभू हैं।।
घाति कर्म के क्षय से अतिशय, मन वच तन से पूजूं।
मुझ में केवलज्ञान सौख्य हो, भव भव दुख से छूटूं।।20।।

ॐ ह्रीं अर्हं समाननखकेशत्वकेवलज्ञानातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुपम दिव्यध्वनी[1] त्रय संध्या, मुहूर्त त्रय त्रय खिरती।
चार कोश तक सुनते भविजन, सब भाषामय बनती।।
घाति कर्म के क्षय से अतिशय, मन वच तन से पूजूं।
मुझ में केवलज्ञान सौख्य हो, भव भव दुख से छूटूं।।21।।

ॐ ह्रीं अर्हं अक्षरानक्षरात्मसर्वभाषामयदिव्यकेवलज्ञानातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–शंभु छंद–

प्रभु के श्रीविहार में दशदिश, संख्यात कोस तक असमय में।
सब ऋतु के फल फलते व फूल, खिल जाते हैं वन उपवन में।।
तीर्थंकर जिनका यह महात्म्य, यह अतिशय सब सुखदायी है।
मैं पूजूं रुचि से मुझको यह, परमानंदामृत दायी है।।22।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वर्तुफलादिशोभिततरुपरिणामदेवोपनीतातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कंटक धूली को दूर करे, जनमनहर सुखद पवन बहती।
प्रभु के विहार में बहुत दूर तक, स्वच्छ हुई भूमी दिखती।।
तीर्थंकर जिनका यह महात्म्य, यह अतिशय सब सुखदायी है।
मैं पूजूं रुचि से मुझको यह, परमानंदामृत दायी है।।23।।

ॐ ह्रीं अर्हं वायुकुमारोपशमितधूलिकंटकादिदेवोपनीतातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब जीव पूर्व के बैर छोड़, आपस में प्रीती से रहते।
इस अतिशय पूजत निंदा कलह अशांति बैर निश्चित टलते।।

1. तिलोयपण्णत्ति में इस दिव्यध्वनि को केवलज्ञान का अतिशय मानकर ग्यारह अतिशय गिनाये हैं। अन्यत्र केवलज्ञान के दश अतिशय लेकर सर्वार्धमागधी भाषा नाम से देवकृत अतिशय में लिया है।

तीर्थंकर जिनका यह महात्म्य, यह अतिशय सब सुखदायी है।
मैं पूजूं रुचि से मुझको यह, परमानंदामृत दायी है।।24।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वजनमैत्रीभावदेवोपनीतातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पृथिवी दर्पण तल सदृश स्वच्छ, अरु रत्नमयी हो जाती है।
जहं जहं प्रभु विहरण करते हैं, यह भूमि रम्य मन भाती है।।
तीर्थंकर जिनका यह महात्म्य, यह अतिशय सब सुखदायी है।
मैं पूजूं रुचि से मुझको यह, परमानंदामृत दायी है।।25।।

ॐ ह्रीं अर्हं आदर्शतलप्रतिमारत्नमयीमहीदेवोपनीतातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुर मेघकुमार सुगंध शीत, जल कण की वर्षा करते हैं।
इंद्राज्ञा से सब देववृंद, प्रभु का अतिशय विस्तरते हैं।।
तीर्थंकर जिनका यह महात्म्य, यह अतिशय सब सुखदायी है।
मैं पूजूं रुचि से मुझको यह, परमानंदामृत दायी है।।26।।

ॐ ह्रीं अर्हं मेघकुमारकृतगंधोदकवृष्टिदेवोपनीतातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शाली जौ आदिक धान्यभरित, खेती फल से झुक जाती है।
सब तरफ खेत हों हरे भरे, यह महिमा सुखद सुहाती है।।
तीर्थंकर जिनका यह महात्म्य, यह अतिशय सब सुखदायी है।
मैं पूजूं रुचि से मुझको यह, परमानंदामृत दायी है।।27।।

ॐ ह्रीं अर्हं फलभारनम्रशालिदेवोपनीतातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब जन मन परमानंद भरें, जहं जहं प्रभु विचरण करते हैं।
मुनिजन भी आत्मसुधा पीकर, क्रम से शिवरमणी वरते हैं।।
तीर्थंकर जिनका यह महात्म्य, यह अतिशय सब सुखदायी है।
मैं पूजूं रुचि से मुझको यह, परमानंदामृत दायी है।।28।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वजनपरमानंदत्वदेवोपनीतातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वायूकुमार जिन भक्तीरत, सुख शीतल पवन चलाते हैं।
जिन विहरण में अनुकूल पवन, उससे जन व्याधि नशाते हैं।।
तीर्थंकर जिनका यह महात्म्य, यह अतिशय सब सुखदायी है।
मैं पूजूं रुचि से मुझको यह, परमानंदामृत दायी है।।29।।

ॐ ह्रीं अर्हं विहरणमनुगतवायुत्वदेवोपनीतातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब कुएं सरोवर बावड़ियाँ, निर्मल जल से भर जाते हैं।
इस चमत्कार को देख भव्य, निज पुण्य कोष भर लाते हैं।।
तीर्थंकर जिनका यह महात्म्य, यह अतिशय सब सुखदायी है।
मैं पूजूं रुचि से मुझको यह, परमानंदामृत दायी है।।30।।

ॐ ह्रीं अर्हं निर्मलजलपूर्णकूपसरोवरादिदेवोपनीतातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आकाश धूम्र उल्कादि रहित, अतिस्वच्छ शरदृतु सम होता।
जिनवर भक्ती वंदन करते, भविजन मन भी निर्मल होता।।
तीर्थंकर जिनका यह महात्म्य, यह अतिशय सब सुखदायी है।
मैं पूजूं रुचि से मुझको यह, परमानंदामृत दायी है।।31।।

ॐ ह्रीं अर्हं शरत्कालवन्निर्मलाकाशदेवोपनीतातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब जन ही रोग शोक संकट, बाधाओं से छुट जाते हैं।
जहं जहं प्रभु विहरण करते हैं, सर्वोपद्रव टल जाते हैं।।
तीर्थंकर जिनका यह महात्म्य, यह अतिशय सब सुखदायी है।
मैं पूजूं रुचि से मुझको यह, परमानंदामृत दायी है।।32।।

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वजनरोगशोकबाधारहितत्वदेवोपनीतातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यक्षेन्द्र चार दिश मस्तक पर, शुचि धर्मचक्र धारण करते।
उनमें हजार आरे अपनी, किरणों से अतिशय चमचमते।।

तीर्थंकर जिनका यह महात्म्य, यह अतिशय सब सुखदायी है।
मैं पूजूं रुचि से मुझको यह, परमानंदामृत दायी है।।33।।

ॐ ह्रीं अर्हं यक्षेंद्रशीशोपरिस्थितधर्मचक्रचतुष्टयदेवोपनीतातिशयगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिश विदिशा में छप्पन सुवर्ण, पंकज खिलते सुरभी करते।
इक पाद पीठ मंगल सु द्रव्य, पूजन सुद्रव्य सुरगण धरते।।
प्रभु के विहार में चरण तले, सुर स्वर्ण कमल रखते जाते।
इन तेरह[1] सुरकृत अतिशय को, हम पूजत ही सब सुख पाते।।34।।

ॐ ह्रीं अर्हं जिनचरणकमलतलस्वर्णकमलरचनादेवोपनीतातिशयगुण-मंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(आठ प्रातिहार्य के 8 अर्घ्य)

–गीता छंद–

वर प्रातिहार्य सु आठ में, तरुवर अशोक विराजता।
मरकत मणी के पत्र पुष्पों, से खिला अति भासता।।
निज तीर्थंकर ऊँचाई से बारह गुणे तुंग फरहरे।
इसकी करें हम अर्चना, यह शोक सब मन का हरे।।35।।

ॐ ह्रीं अर्हं अशोकवृक्षमहाप्रातिहार्यगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु शीश पर त्रय छत्र शोभें, मोतियों की हैं लरें।
प्रभु तीन जग के ईश हैं, यह सूचना करती फिरे।।
क्या चंद्रमा नक्षत्रगण, को साथ ले भक्ती करें।
इस कल्पनायुत छत्रत्रय की, हम सदा अर्चा करें।।36।।

ॐ ह्रीं अर्हं छत्रत्रयमहाप्रातिहार्यगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल फटिक मणि से बना, बहुरत्न से चित्रित हुआ।
जिननाथ सिंहासन दिपे, निज तेज से नभ को छुआ।।

---

1. तिलोयपण्णत्ति में दिव्यध्वनि नाम से 11वाँ अतिशय केवलज्ञान अतिशय में ले लेने से यहाँ देवोपनीत में तेरह ही लिए हैं।

इस पीठ पर तीर्थेश, चतुरंगुल अधर ही राजते।
यह प्रातिहार्य महान जो जन पूजते निज भासते।।37।।

ॐ ह्रीं अर्हं सिंहासनमहाप्रातिहार्यगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गणधर मुनीगण देव देवी, चक्रि नर पशु आदि सब।
निज निजी कोठे बैठ अंजलि जोड़ते[1] सुप्रसन्न मुख।।
इन बारहों गण से घिरे तीर्थेश त्रिभुवन सूर्य हैं।
यह प्रातिहार्य महान इसको जजत जन जग सूर्य हैं।।38।।

ॐ ह्रीं अर्हं द्वादशगणपरिवेष्टितमहाप्रातिहार्यगुणमंडिताय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब आइये जिन शरण में, मानों कहे यह दुंदुभी।
सब देवगण मिलकर बजाते बहुत बाजे दुंदुभी।।
यह प्रातिहार्य महान इसको वाद्य ध्वनि से पूजते।
सुरगण बजावें वाद्य उनके सामने बहु भक्ति से।।39।।

ॐ ह्रीं अर्हं देवदुंदभिमहाप्रातिहार्यगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरगण गगन से कल्पतरु के पुष्प बहु बरसा रहे।
यह वर्ण वर्ण सुगंध खिलते पुष्प जन मन भा रहे।।
यह प्रातिहार्य महान इसको सुमन अर्घ लिये जजूँ।
अतिशय सुयश सुख प्राप्तकर सब अशुभ अपयश से बचूँ।।40।।

ॐ ह्रीं अर्हं सुरपुष्पवृष्टिमहाप्रातिहार्यगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह कोटि भास्कर तेज हरता प्रभामंडल नाथ का।
जन दर्श से निज सात भव को देखते उसमें सदा।।

1. यहाँ प्रातिहार्य में दिव्यध्वनि की जगह 'भगवान बारह गण से घिरे हुए हैं यह प्रातिहार्य है।' यहाँ तिलोयपण्णत्ति के आधार से अतिशय और प्रातिहार्यों का वर्णन है।

यह प्रातिहार्य महान इसको पूजहूँ अतिचाव से।
निज आत्मतेज अपूर्व पाकर छूटहूँ भव दाव से।।41।।

ॐ ह्रीं अर्हं भामंडलमहाप्रातिहार्यगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुर यक्षगण चौंसठ चंवर जिनराज पर ढोरें सदा।
ये चंद्रसम उज्ज्वल चंवर हरते सभी मन की व्यथा।।
यह प्रातिहार्य महान इसको पूजहूँ श्रद्धा धरे।
जो जजें चामर ढोरकर वे उच्च पद के सुख भरें।।42।।

ॐ ह्रीं अर्हं चतुःषष्टिचामरमहाप्रातिहार्यगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(चार अनंत चतुष्टय के 4 अर्घ्य)

–नाराच छंद–

तीन लोक तीन काल की समस्त वस्तु को।
एक साथ जानता अनंत ज्ञान विश्व को।।
जो अनंतज्ञान युक्त इंद्र अर्चते जिन्हें।
पूजहूँ सदा उन्हें अनंतज्ञान हेतु मैं।।43।।

ॐ ह्रीं अर्हं अनंतज्ञानगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लोक अरु अलोक के समस्त ही पदार्थ को।
एक साथ देखता अनंत दर्श सर्व को।।
जो अनंत दर्श युक्त इंद्र अर्चते उन्हें।
पूजहूँ सदा उन्हें अनंत दर्श हेतु मैं।।44।।

ॐ ह्रीं अर्हं अनंतदर्शनगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बाधहीन जो अनंत सौख्य भोगते सदा।
हो भले अनंतकाल आवते न ह्यां कदा।।
वे अनंत सौख्य युक्त इंद्र अर्चते उन्हें।
पूजहूँ सदा तिन्हें अनंत सौख्य हेतु मैं।।45।।

ॐ ह्रीं अर्हं अनंतसौख्यगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो अनंतवीर्यवान अंतराय को हने।
तिष्ठते अनंत काल श्रम नहीं कभी उन्हें।।

वे अनंत शक्ति युक्त इंद्र अर्चते उन्हें।
पूजहूँ सदा तिन्हें अनंतवीर्य हेतु मैं।।46।।

ॐ ह्रीं अर्हं अनंतवीर्यगुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्णार्घ्य –शंभु छंद

दश अतिशय जन्म समय से ग्यारह केवलज्ञान उदय से हों।
देवोंकृत तेरह अतिशय हों, चौंतिस अतिशय सब मिलके हों।।
वर प्रातिहार्य हैं आठ कहे, सु अनंत चतुष्टय चार कहे।
ये छ्यालिस गुण तीर्थंकर के, हम पूजें वांछित सर्व लहें।।47।।

ॐ ह्रीं अर्हं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

सरस्वती माता का अर्घ्य

जलादी लिये स्वर्ण पुष्पों सहित मैं।
करूँ अर्घ अर्पण सरस्वति चरण में।।
जजूँ तीर्थकर दिव्यध्वनि को सदा मैं।
करूँ चित्त पावन नहा ध्वनि नदी में।।1।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरमुखकमलविनिर्गतसर्वभाषामयदिव्यध्वनिभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

केवलज्ञान महालक्ष्मी का अर्घ्य

जल चंदन अक्षत माला चरु, दीप धूप फल लाऊँ।
जिनगुण लक्ष्मी की पूजा कर, रत्नत्रय निधि पाऊँ।।
केवलज्ञान महालक्ष्मी को, नित पूजूँ हरषाऊँ।
सुख संपति सौभाग्य प्राप्त कर, शिवलक्ष्मी को पाऊँ।।1।।

ॐ ह्रीं केवलज्ञानमहालक्ष्म्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गोमुख यक्ष का अर्घ्य

–दोहा–

समवसरण में भक्तियुत, तीर्थंकर के पास।
यक्ष यक्षिणी नित रहे, उन्हें बुलाऊँ आज।।

–चाल शेर–

श्री आदिनाथ के निकट जो भक्ति से रहें।
'गोवदन' यक्ष नाम जिनका सूरिवर कहें।।
जिननाथ के शासन के देव आइये यहाँ।
निज यज्ञ भाग लीजिये सुख कीजिये यहाँ।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवस्य शासनदेव गोमुखयक्ष! अत्र आगच्छ आगच्छ, इदं जलादि अर्घ्यं गृहाण गृहाण स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

चक्रेश्वरी यक्षी का अर्घ्य

–नरेन्द्र छंद–

वृषभदेव के समवसरण में, 'चक्रेश्वरी' सुयक्षी।
सम्यग्दर्शन गुण से मंडित, खंडे सर्व विपक्षी।।
महायज्ञ पूजा विधान में, आवो आवो माता।
यज्ञभाग मैं अर्पण करता, करो सर्व सुख साता।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवस्य शासनदेवि चक्रेश्वरी यक्षि! अत्र आगच्छ आगच्छ, इदं जलादि अर्घ्यं गृहाण गृहाण स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य-**ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिविभूषिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय नमः।**

(108 बार या 9 बार पुष्प या पीले तंदुल से जाप्य करें)

जयमाला

–त्रिभंगी छंद–

जय जय तीर्थंकर घातिक्षयंकर केवलसूर्य प्रभात खिला।
त्रिभुवन समुद्र महिं हर्ष लहर हुइ, सब जन को आनंद मिला।।
सुर कल्पतरू से सुमनस बरसें, इंद्र सिंहासन डोल रहे।
सब दिशा प्रसन्ना, स्वच्छ सुगगना, मंद सुगंधित पवन बहें।।1।।

–शंभु छंद–

जय केवलज्ञान उदित होते, तिहुंजग में अद्भुत शांति हुई।
सब जग में अतिशय क्षोभ उठा, नरकों में भी क्षण शांति हुई।।
सुर कल्पवासी गृह में घंटा, स्वयमेव बजे सुर नाच उठे।
ज्योतिषी गृहों में सिंहनाद, सुरललना के मन नाच उठे।।2।।
व्यंतर सुरगृह में भेरी और नगाड़े जोरों से बाजे।
सुर भवनवासि घर में शंखों की ध्वनी हुई, सब दिश गाजें।।
सुर गज सूँड़ों में कमल लिए ऊँचे कर करके नाच रहे।
मानों ये प्रभु को अर्घ करें, भक्ती से सुरगण नाच रहे।।3।।
ऐरावत हाथी की शोभा, सुरगुरु वर्णन नहिं कर सकते।
वह एक लाख योजन प्रमाण, बत्तीस बने हैं मुख उसके।।
प्रतिमुख में आठ आठ दंता, प्रतिदंत एक-इक सरवर हैं।
प्रति सरवर में एकेक कमलिनी, स्वर्णकमल से सुरभित हैं।।4।।
एकेक कमलिनी कमलिनि में, बत्तिस बत्तिस हैं कमल खिले।
प्रत्येक कमल में बत्तिस दल, वे बड़े बड़े लंबे फैले।।
इक-इक दल पर बत्तिस बत्तिस, सुर अप्सरियाँ बहु नृत्य करें।
सब हावभाव श्रृंगार पूर्ण, नवरस में भक्ती स्तवन करें।।5।।
यह हाथी श्वेत वर्ण सुंदर, घंटा माला किंकणियों से।
अति शोभ रहा मन मोह रहा, नर्तन करतीं अप्सरियों से।।
इसके ऊपर कामग विमान, रत्नों से बना चमकशाली।
मोती के हार पुष्पमाला, फन्नूसों से अतिशयशाली।।6।।

सौधर्म इंद्र शचिदेवी सह, इस गज पर चढ़कर आते हैं।
ईशान इंद्र आदिक सब मिल, निज निज वाहन चढ़ आते हैं।।
सबसे आगे किल्विषक देव, बहु वाद्य बजाते चलते हैं।
फिर सौधर्मेंद्र प्रभृति सुरगण, निज निज वैभवयुत चलते हैं।।7।।
आगे आगे सुर अप्सरियाँ किन्नरियाँ नर्तन करती हैं।
जिनमहिमा के स्तोत्र पढ़े, जिनवर गुण वर्णन करती हैं।।
गज पर सत्ताइस कोटि प्रमित अप्सरियाँ नृत्य करें सर में।
सातों कक्षा की सेना के सब देव चलें निज निज क्रम में।।8।।
इंद्राज्ञा से धनपति आकर, इक क्षण में समवसरण रचता।
अतिशय रचना है जगह जगह, त्रिभुवन का वहाँ वैभव रखता।।
प्रभु समवसरण में सिंहासन, पर चतुरंगल से अधर रहें।
वैभव अनंत को पाकर भी, प्रभु उससे नित्य अलिप्त रहें।।9।।
चौंतीसों अतिशय सहित आप, वसु प्रातिहार्य के स्वामी हो।
आनन्त्य चतुष्टय से मंडित, सब जग के अंतर्यामी हो।।
सुरपति प्रदक्षिणा दे करके, जिनदेव वंदना करते हैं।
नरपति पशु भी आ वंदन कर, बारह कोठों में बसते हैं।।10।।
यद्यपि यह क्षेत्र बहुत छोटा, फिर भी अवकाश सभी को है।
जिनवर महात्म्य से यह अतिशय सब आपस में अस्पर्शित हैं।।
इन कोठों में मिथ्यादृष्टी, संदिग्ध विपर्यय नहिं जाते।
नहिं जाय असंज्ञी अरु अभव्य, पाखंडी द्रोही नहिं जाते।।11।।
नहिं वहां कभी आतंक रोग, क्षुध तृष्णा कामादिक बाधा।
नहिं जन्म मरण नहिं वैर कलह, नहिं शोक वियोगजनित बाधा।।
सब सीढ़ी एक हाथ ऊँची, जो बीस हजार प्रमाण कही।
बालक व वृद्ध पंगू आदिक, अंतर्मुहूर्त[1] में चढ़ें सही।।12।।
प्रभु की कल्याणी वाणी सुन, निज भव त्रैकालिक जान रहे।
अतिशय अनंत गुण श्रेणिरूप, परिणाम विशुद्धी ठान रहे।।

1. अड़तालिस मिनट में।

सब असंख्यात गुणश्रेणी में, कर्मों का खंडन करते हैं।
क्रम से जन बोधि समाधी पा, मुक्तीकन्या को वरते हैं।।13।।

प्रभु क्षुधातृषादिक जन्म मरण, अठरह दोषों से छूट गये।
सब दोष आप से त्यक्त अतः सारे जग में ही घूम रहे।।
गोमुख प्रभु शासन यक्ष देव, चक्रेश्वरि माता यक्षी हैं।
जिनशासन देव और देवी , इनमें प्रभु भक्ती सच्ची है।।14।।

तीर्थंकर के गुणमणि अनंत, नहिं गणधर भी कह सकते हैं।
जो पूजें ध्यावें भक्ति करें, उनके मन पंकज खिलते हैं।।
मैं भी प्रभु आप कीर्ति सुनकर, अब चरण शरण में आया हूँ।
अब जो कर्तव्य आपका हो, वह कीजे मैं अकुलाया हूँ।।15।

–घत्ता–

जय जय जिन भास्कर, सर्व सुखकार, ज्ञान ज्योति उद्योत भरें।
मुझ 'ज्ञानमती' को, तीन रतन दो, जिससे तुम पद प्राप्त करें।।

ॐ ह्रीं षट्चत्वारिंशद्गुणमंडितगोमुखचक्रेश्वरीयक्षयक्षीसेवितश्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–नरेन्द्र छंद–

ऋषभदेव के समवसरण को, जो जन पूजें रुचि से।
मनवांछित फल को पा लेते, सर्व दुखों से छुटते।।
धर्मचक्र के स्वामी बनते, तीर्थंकर पद पाते।
केवल 'ज्ञानमती' किरणों से भविमन ध्वांत नशाते।।1।।

।।इत्याशीर्वादः।।

पूजा नं.-3

गणधर पूजा

–अथ स्थापना-गीता छंद–

गणधर बिना तीर्थेश की, वाणी न खिर सकती कभी।
निज पास में दीक्षा ग्रहें, गणधर भि बन सकते वही।।
तीर्थेश की ध्वनि श्रवण कर, उन बीज पद के अर्थ को।
जो ग्रथें द्वादश अंगमय, मैं जजूँ उन गणनाथ को।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरगणधरसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरगणधरसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरगणधरसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथ अष्टक–भुजंगप्रयात

पयोराशि का नीर निर्मल भराऊँ।
गुरू के चरण तीन धारा कराऊँ।।
जजूँ गणधरों के पदाम्भोज को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि[1] को मैं।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरगणधरचरणेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सुगंधीत चंदन लिये भर कटोरी।
जगत्तापहर चर्च हूँ हाथ जोरी।।
जजूँ गणधरों के पदाम्भोज को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरगणधरचरणेभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

धुले श्वेत अक्षत लिये थाल भरके।
धरूँ पुंज तुम पास बहु आश धर के।।

1. समुद्र।

जजूँ गणधरों के पदाम्भोज को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरगणधरचरणेभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

जुही केतकी पुष्प की माल लाऊँ।
सभी व्याधि हर आप चरणों चढ़ाऊँ।।
जजूँ गणधरों के पदाम्भोज को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरगणधरचरणेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस मिष्ट पक्वान्न अमृत सदृश ले।
परमतृप्ति हेतू चढ़ाऊँ तुम्हें मैं।।
जजूँ गणधरों के पदाम्भोज को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।5।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरगणधरचरणेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शिखा दीप की जगमगाती भली है।
जजत ही तुम्हें ज्ञानज्योती जली है।।
जजूँ गणधरों के पदाम्भोज को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।6।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरगणधरचरणेभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगुरु धूप खेते उड़े धूम्र नभ में।
दुरित कर्म जलते गुरूभक्ति वशतें।।
जजूँ गणधरों के पदाम्भोज को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।7।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरगणधरचरणेभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अनन्नास नींबू बिजौरा लिये हैं।
तुम्हें अर्पते सर्व वांछित लिये हैं।।
जजूँ गणधरों के पदाम्भोज को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।8।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरगणधरचरणेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

लिये थाल में अर्घ है भक्ति भारी।
गुरू अर्चना है सदा सौख्यकारी।।
जजूँ गणधरों के पदाम्भोज को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।9।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरगणधरचरणेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

गणधर पदधारा करूँ, चउसंघ शांती हेत।
शांतीधारा जगत में, आत्यंतिक सुख देत।।10।।

शांतये शांतिधारा।

चंपक हरसिंगार बहु, पुष्प सुगंधित सार।
पुष्पांजलि से पूजते, होवे सौख्य अपार।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ
(चौरासी गणधर गुरुसेवित 84 अर्घ्य)

-दोहा-

गणधर गुरु से वंद्य नित, तीर्थंकर वृषभेश।
पुष्पांजलि से पूजते, नशते विघ्न अशेष।।

इति मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

-शंभु छंद-

श्री ऋषभदेव के तृतिय पुत्र, मां यशस्वती के नंदन हो।
तज पुरिमतालपुर नगर राज्य, मुनि बने जगत अभिनन्दन हो।।
सब ऋद्धि समन्वित गणधर गुरु, हे 'ऋषभसेन' तुमको वंदन।
तुम प्रथम तीर्थंकर के पहले, गणधर हम करते नित्य यजन।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभसेनगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'श्रीकुंभ' गणीश्वर द्वादशगण, के प्रमुख नाथ के गुण गाते।
सब गुणरत्नों से भरित आप, नित आत्म सुधारस आस्वादें।।

सब विघ्न विनाशें भक्तों के, इसलिये भक्ति से हम पूजें।
गणधरगुरु से वंदित प्रभु की, पूजा कर भवदुख से छूटें।।2।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीकुंभगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'श्री दृढ़रथ' गणधर ऋषभदेव के समवसरण के षट्पद हो।
भक्ती से निजपरमानंदामृत पीते आप तृप्तियुत हो।।
सम्पूर्ण शास्त्र के ज्ञाता हो, फिर भी जिनवर के दास बने।
हम पूजें ऋषभदेव जिनको, पूरे हों वांछित कार्य घने।।3।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीदृढ़रथगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'श्री शतधनु' गणधर सप्त ऋद्धि-धारी श्रुत वारिधि पारंगत।
निज शुद्ध बुद्ध परमात्मतत्त्व, ध्याते फिर भी प्रभु गुण में रत।।
उन प्रभु आदीश्वर के गुण को, मैं भी गाऊँ नित भक्ति करूँ।
जल आदिक अर्घ्य चढ़ा करके, निज सम्यग्दर्शन शुद्धि करूँ।।4।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीशतधनुगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीवृषभेश्वर के समवसरण में, कहे 'देवशर्मा' गणधर।
ये भक्तजनों के कष्ट हरें, इनको जो पूजें रुचि धरकर।।
इनसे वंदित जिन चरणकमल, उन प्रभु को अर्चूं श्रद्धा से।
श्रीऋषभदेव जिनराज शरण, जो पावें छूटें विपदा से।।5।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीदेवशर्मागणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'श्रीदेवभाव' गणधर स्वामी, मनपर्ययज्ञानी जगत्राता।
व्यवहार रतनत्रय के बल से, निश्चय रत्नत्रय को साधा।।
श्रीऋषभदेव सा गुरु पाया, निज ज्ञानज्योति से आलोकित।
उन प्रभु के चरणकमल पूजूँ, निज को पाऊँ निज से शोभित।।6।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीदेवभावगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'श्रीनंदन' गणधर गुरु को नित, वंदूँ आनन्दित होकर के।
वे ज्ञानानंद स्वभावी थे, प्रतिक्षण आत्मा को ध्याकर के।।
वे ऋषभदेव के शिष्य बने, उस भव से ही शिवधाम लिया।
मैं पूजूँ अर्घ्य चढ़ाकर के, गुरु के गुरु को शिर नमित किया।।7।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीनन्दनगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'श्रीनंदन' गणधर गुणधर, सम्पूर्ण परिग्रह के त्यागी।
निज को निज में निज के द्वारा, नित ध्याते निजगुण अनुरागी।।
श्रीऋषभदेव के निकट रहें, अविरत जिनभक्ती में रत थे।
मैं पूजूँ अर्घ्य चढ़ा करके, मेरे भव-भव के फंद कटें।।8।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसोमदत्तगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'श्रीसूरदत्त' गणधर स्वामी, संयतमुनि नग्न दिगम्बर थे।
अट्ठाइस मूलगुणों से युत, बहुविध उत्तर गुणधारी थे।।
ये ऋषभदेव के चरणकमल, में नित नमते उनको वंदूँ।
गणधर गुरु को तीर्थंकर को, पूजत ही पापअरी खंडूँ।।9।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसूरदत्तगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीऋषभदेव के सन्निध में, गणधर गुरु 'वायूशर्मा' थे।
सब कर्म धूलि को उड़ा-उड़ा, अगणित गुणयुत शुचिधर्मा थे।।
संयम बल से त्रयविध अवधी, पाकर निरवधि गुण रत्नाकर।
उनको उनके गुरु को पूजूँ, पा जाऊँ अनवधि सुखसागर।।10।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीवायुशर्मागणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'श्रीयशोबाहु' गणधर गुणधर, निजगुण के यश को फैलाया।
जिसमें धर्मामृत भरा हुआ, इस अतुल तीर्थ में नहलाया।।
भाक्तिकजन इसमें नहा नहा, निज पाप मलों को धोते थे।
उन तीर्थ तीर्थकर को यजते, सब वांछित पूरे होते थे।।11।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीयशोबाहुगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'देवाग्नी' गणधर ने तप बल, से सर्व ऋद्धियाँ पायी थीं।
ध्यानानल में सब कर्म जला, कर सर्वसिद्धियाँ पायी थीं।।
श्रीऋषभदेव के चरणकमल, के भ्रमर बने थे जग त्राता।
उन गुरु को भगवत् चरणों को, मैं पूजूँ मिले सर्व साता।।12।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीदेवाग्निगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-अडिल्ल छंद-

बुद्धि ऋद्धि में अवधिज्ञान है ऋद्धि जो।
अणु से महास्कंध पर्यंते मूर्त को।।

जाने गणधर 'अग्निदेव' सब ऋद्धियुत।
उनके गुरु को भी मैं पूजूँ सिद्धिकृत।।13।।
ॐ ह्रीं अर्हं अग्निदेवगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मनुज लोक के भीतर चिंतित वस्तु को।
जाने मूर्तिक द्रव्य मनपर्यय ज्ञान वो।।
इन ऋद्धीयुत 'अमितगुप्त' गणनाथ को।
उनके गुरु तीर्थंकर प्रभु को नित जजों।।14।।
ॐ ह्रीं अर्हं अमितगुप्तगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लोकालोक प्रकाशे केवलज्ञान जो।
सब ऋद्धीयुत पाते जो इस ऋद्धि को।।
उन 'मित्राग्नी' गणधर को मैं नित जजूँ।
श्रीऋषभदेव को पूजूँ निज आतम भजूँ।।15।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमित्राग्निगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शब्द संख्यातों अर्थ अनंतों से युते।
अनंत लिंगों साथ बीजपद जानते।।
बीजऋद्धियुत भी 'हलभृत' गणनाथ हैं।
उनके गुरु तीर्थंकर त्रिभुवन नाथ हैं।।16।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीहलभृतगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शब्दरूप बीजों को मति से जो धरें।
मिश्रण बिन बुद्धी कोठे में जो भरें।।
गणधरदेव 'महीधर' जिनवर भक्त थे।
उनके गुरु तीर्थंकर प्रभु को हम जजें।।17।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमहीधरगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुरु उपदेश सुपाय एक पद को ग्रहें।
उसके ऊपर या पहले के पद लहें।।
उभय ग्रहें या त्रयविध पदानुसारिणी।
गुरु 'महेन्द्र' की जिनभक्ती भवहारिणी।।18।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमहेन्द्रगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रोत्रेन्द्रिय उत्कृष्ट क्षेत्र के बाहिरे।
अक्षर अनक्षरात्मक वच सुन उत्तरें।।
गुरु 'वसुदेव' संभिन्नश्रोतृ ऋद्धी धरें।
उनके गुरु तीर्थंकर के गुण उच्चरें।।19।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीवसुदेवगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रसनेन्द्रिय उत्कृष्ट क्षेत्र के बाह्य जो।
संख्यातों योजन नाना रस स्वाद को।।
जो जाने दूरास्वादन ऋद्धी धरें।
देव 'वसुंधर' जिनभक्ती से भव तरें।।20।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीवसुंधरगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्पर्शेन्द्रिय उत्कृष्ट क्षेत्र के बाह्य भी।
संख्यातों योजन स्पर्श को जानहीं।
'अचलगुरु' दूरस्पर्श ऋद्धि आदिक सहित।
उनके गुरु ऋषभेश्वर हैं त्रिभुवन महित।।21।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीअचलगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घ्राणेन्द्रिय उत्कृष्ट क्षेत्र के बाह्य भी।
संख्यातों योजन सुगंध को जान हीं।।
'मेरू' गणधर दूरघ्राण ऋद्धी धरें।
उनके गुरु को पूजत हम समसुख भरें।।22।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमेरूगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्णेन्द्रिय उत्कृष्ट विषय के बाहिरे।
संख्यातों योजन मनुष्य पशु अक्षरे।।
पृथक् पृथक् सुन लेय 'मेरुधन' गणधरा।
उनके गुरु को जजूँ सदा वे सुखकरा।।23।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमेरूधनगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नेत्रेन्द्रिय उत्कृष्ट क्षेत्र से बाह्य जो।
चक्रवर्ति के नेत्रविषय से अधिक वो।।

दूरदर्शिता ऋद्धि 'मेरुभूती' धरें।
तीर्थंकर के चरणकमल में नति करें।।24।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमेरुभूतिगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-नरेन्द्र छंद-

रोहिणी प्रभृति महाविद्यायें, पाँच शतक मानी हैं।
लघु विद्या अंगुष्ठप्रसेना प्रभृति सप्तशत ही हैं।।
दशम पूर्व पढ़ने पर च्युत नहिं दशपूर्वित्व कहाते।
गुरू 'सर्वयश' ऋषभेश्वर के गुणयश को नित गाते।।25।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसर्वयशगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ग्यारह अंग चतुर्दश पूरब पढ़कर श्रुतकेवलि हों।
ऋद्धि चतुर्दशपूर्वि धरें नित 'सर्वयज्ञ' गणधर वो।।
ऋषभदेव के समवसरण में धर्मध्यान के ध्यानी।
उनको उनके गुरु को पूजूँ बनूँ आत्म श्रद्धानी।।26।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसर्वयज्ञगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अभ्र भौम अंग स्वर व्यंजन लक्षण चिन्ह स्वपन हों।
आठ निमित्तों से सबके शुभ अशुभ बताते मुनि जो।।
वे अष्टांगनिमित्त ऋद्धिधर 'सर्वगुप्त' गणधर गुरु।
ऋषभदेव की भक्ती में रत नमूँ नमूँ मैं रुचिधर।।27।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसर्वगुप्तगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

औत्पत्तिक परिणामिक विनयिक कही कर्मजा बुद्धी।
प्रज्ञाश्रमण ऋद्धि चउविधधर गणधर गुरु बनते भी।।
नाम 'सर्वप्रिय' ऋषभदेव के शिष्य सर्व जगत्राता।
जजूँ तीर्थकर चरणकमल को पाऊँ निज सुखसाता।।28।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसर्वप्रियगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुरु उपदेश बिना कर्मों के, उपशम से तप बल से।
जो प्रत्येक बुद्धि ऋद्धी है, ऋषियों के ही प्रगटे।।

'सर्वदेव' गणधर गुरुवर इस ऋद्धि सहित सुखकारी।
उनके गुरु ऋषभेश्वर को मैं, पूजूँ भवदुखहारी।।29।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसर्वदेवगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब परमत को सुरपति को भी, जो कर सकें निरुत्तर।
इन वादित्वऋद्धियुत गणधर को वंदूँ अंजलिकर।।
'सर्वविजय' से वंदित जिनवर चरणकमल शिर नाऊँ।
गणधरगुरु को तीर्थंकर को जजत आत्मसुख पाऊँ।।30।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसर्वविजयगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अणू बराबर छिद्रों में भी, जो ऋषि घुस कर बैठें।
चक्रवर्ति का कटक बना दें अद्भुत विक्रिय करके।।
ऐसे अणिमा ऋद्धि विभूषित 'विजयगुप्त' गणधर को।
नमूँ इन्हों के गुरु तीर्थंकर जजूँ स्वात्मसुख झट हो।।31।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीविजयगुप्तगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरु बराबर तनु कर सकते महिमाऋद्धि धरें जो।
विक्रिय ऋद्धी के बल से गुरु पर उपकार करें वो।।
'विजयमित्र' गणधर गुरु इन सब ऋद्धि समन्वित माने।
उनको उनके गुरु को पूजत कर्म कालिमा हाने।।32।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीविजयमित्रगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लघिमा ऋद्धि सहित ऋषि वायू सम हल्का तनु कर सकते।
जन जन के उपकार हेतु ही, ऋद्धि प्रयोगें रुचि से।।
'श्रीविजयिल' गणधर गुरु ऐसे उनके चरण नमूँ मैं।
श्रीऋषभेश्वर को नित पूजूँ आतम सौख्य भरूँ मैं।।33।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीविजयिलगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'अपराजित' गणधर प्रभु जग में सदा विजयशाली थे।
अधिक भारयुत वज्रसदृश तनु तप बल से धर सकते।।
गरिमा ऋद्धि सहित को वंदूँ तपमहिमा की गरिमा।
वंदूँ ऋषभदेव तीर्थंकर पाऊँ तप की महिमा।।34।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीअपराजितगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भूमी पर बैठे ही बैठे, सूर्य चंद्र छू सकते।
अंगुलि से ही मेरुशिखर, छूकर मस्तक से नमते।।
प्राप्तिनाम विक्रिया सहित, 'वसुमित्र' गणाधिप वंदूँ।
तीर्थंकर श्रीआदिनाथ के, शिष्यों को अभिनंदूँ।।35।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीवसुमित्रगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भू पर भी जलसम अवगाहे जल में भू सम चलते।
इस प्राकाम्यविक्रिया बल से अद्भुत महिमा धरते।।
'विश्वसेन' गणधर को वंदूँ नाना ऋद्धि सहित जो।
आदिनाथ के चरणकमल के भ्रमर भक्ति तत्पर वो।।36।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीविश्वसेनगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-रोला छंद-

जग में प्रभुता वृद्धि यह ईशित्व कहावे।
'साधुषेण' के सिद्ध सब जन से यश पावें।।
उन गणधर से पूज्य ऋषभदेव तीर्थंकर।
जजूँ भक्ति से नित्य पाऊँ सौख्य निरन्तर।।37।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसाधुषेणगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब जन वश में होय, ऋद्धि वशित्व कहावे।
'सत्यदेव' गणदेव, नाना ऋद्धि धरावें।।
इनसे पूजित पाद, ऋषभदेव भगवंता।
करूँ निरन्तर जाप, पाऊँ सौख्य अनंता।।38।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसत्यदेवगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिसके बल से शैल, शिला आदि के मधि से।
वृक्ष आदि में छेद, किये बिना ही चलते।।
विक्रिय अप्रतिघात, 'देवसत्य' गुण धरते।
ऋषभदेव के पास, रहें द्विदश गण धरते।।39।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीदेवसत्यगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस ऋद्धी से साधु, हों अदृश्य नहिं दिखते।
विक्रिय अंतर्धान, तप बल से ही उपजे।।

'सत्यगुप्त' गणनाथ, बहुविध ऋद्धी धारी।
उन गुरु आदिनाथ, जजूँ सर्वहितकारी।।40।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसत्यगुप्तगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एकहि साथ अनेक-रूप बना सकते जो।
कामरूप यह ऋद्धि, तप बल से प्रगटे जो।।
'सत्यमित्र' गणनाथ, ऋषभदेव गुण गाते।
नमूँ नमाकर माथ, तीर्थंकर गुण गाके।।41।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसत्यमित्रगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस ऋद्धी से साधु, गगन गमन कर सकते।
धरें गगनगामित्व, 'निर्मल' मुनि तपबल से।।
इनके गुरु वृषभेश, उनको नित्य जजूँ मैं।
रोग, शोक, संक्लेश, सब दुःख दूर करूँ मैं।।42।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीनिर्मलगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जल में चलते जंतु-घात वहाँ नहिं होवे।
जलचारण यह ऋद्धि, तपश्चरण से होवे।।
'श्रीविनीत' गणधार, नमूँ, नमूँ चित लाके।
ऋषभदेव को माथ, नाऊँ अर्घ्य चढ़ाके।।43।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीविनीतगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चउ अंगुल भू उपरि, चलते अधर गगन में।
जंघाचारण ऋद्धि, धरते समवसरण में।।
'संवर' गणधर देव, उनके गुरु आदीश्वर।
जजत करूँ दुःख छेव, पाऊँ सुख क्षेमंकर।।44।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसंवरगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

फल पत्ते अरु फूल, उन पर चरण धरें भी।
चारणकिरिया ऋद्धि, जीवघात नहिं हो भी।।
'मुनीगुप्त' गणनाथ, वंदूँ व्याधि नशाऊँ।
नमूँ नमाकर माथ, ऋषभदेव गुण गाऊँ।।45।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमुनिगुप्तगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अग्निशिखा पर चलें, बाधा रंच न होवे।
धूएं पर भी चलें, पग स्खलित न होवे।।
'मुनीदत्त' गणनाथ, अग्निधूम चारणयुत।
आदीश्वर के शिष्य, नमूँ नमूँ मैं शिरनत।।46।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीअग्निदत्तगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अप्कायिक वध टाल, मेघों पर चल सकते।
जलधारा पर चलें, चारणऋषि बन करके।।
'मुनीयज्ञ' गणदेव, ऋषभदेव को नमते।
हम पूजें कर सेव, नाम मंत्र जप जपके।।47।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमुनियज्ञगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो मकड़ी के तंतु, पर हल्के पग धरते।
बाधा करें न रंच, चारण ऋद्धी धरते।।
'मुनीदेव' गणनाथ, नमूँ नमूँ नित शिर नत।
जजूँ तीर्थकर नाथ, पाऊँ जिनगुणसंपत्।।48।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमुनिदेवगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-शंभु छंद-

जो सूर्य चंद्र ग्रह नखत तारका किरणों का अवलंबन लें।
बहुतेक योजनों गमन करें ज्योतिश्चारण क्रिय ऋद्धी लें।।
गुरु 'गुप्तियज्ञ' गणधर बनकर, संपूर्ण ऋद्धि के स्वामी थे।
श्री आदिनाथ के चरण नमें, जो त्रिभुवन अंतर्यामी थे।।49।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीगुप्तियज्ञगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस ऋद्धी से मुनि वायु पंक्ति, के आश्रय से नभ में चलते।
स्खलन रहित पग धर धरके, बहुते कोशों तक चल सकते।।
यह वायुचारणा क्रिया ऋद्धि, 'श्रीमित्रयज्ञ' गणधर धरते।
उनके गुरु ऋषभदेव को नित, पूजत ही रोग शोक नशते।।50।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमित्रयज्ञगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप ऋद्धी के हैं सात भेद, उनमें हि उग्र तप पहला है।
एक-एक उपवास अधिक, जीवन भर बढ़ता रहता है।।
गणदेव 'स्वयंभू' ने बहुविध, ऋद्धी से आत्मविकास किया।
श्री ऋषभदेव को ध्या ध्याकर, निज केवलज्ञान प्रकाश लिया।।51।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीस्वयंभूगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बेला आदिक उपवास करें, जब ऋद्धि दीप्तमय हो जाती।
आहार न हो बल तेज बढ़े, नहिं होती उन्हें भूख व्याधी।।
यह इस ऋद्धी का ही प्रभाव, तनु में बल माँस रुधिर वृद्धी।
'भगदेव' गणीश्वर वृषभेश्वर, को पूजत मिलती सब सिद्धी।।52।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीभगदेवगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस ऋद्धी से आहार ग्रहें, वह तपे लोह पर जल सदृश।
नीहार न हो मल मूत्र शुक्र, आदिक धातू नहिं बने विविध।।
बस शक्ति बढ़े तप बढ़े सदा, ''भगदत्त'' गणीश्वर को प्रणमूँ।
श्री ऋषभदेव को नित्य जजूँ, भव भव के कर्म कलंक वमूँ।।53।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीभगदत्तगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो अणिमादिक चारण आदिक, नाना ऋद्धि से युक्त रहें।
मंदरपंक्ती सिंह निष्क्रीड़ित, आदिक उत्तम उपवास गहें।।
वो चार ज्ञानधारी ऋषिवर, ही महातपो ऋद्धी धारें।
'भगफल्गू' गणधर के गुरुवर, श्री ऋषभदेव भव से तारें।।54।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीभगफल्गूगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनशन आदिक बारह विध के, तप उग्र उग्र जो करते हैं।
ज्वर आदिक से पीड़ित हो भी, आतापनादि तप धरते हैं।।
'श्रीगुप्तफल्गु' तप ऋद्धिसहित, गणधर गुरु विघ्नविनायक हैं।
उनके गुरु ऋषभदेव जिनवर, पूजत सुख संपतिदायक हैं।।55।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीगुप्तफल्गुगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनि घोर पराक्रम ऋद्धी से, अतिशायी शक्ती पाते हैं।
त्रिभुवन संहार करण जलधी, शोषण में समरथ होते हैं।।

1. षट्खण्डागम, पुस्तक 9, पृ. 90।

यद्यपि ये कार्य नहीं करते, जगबन्धू 'मित्रफल्गु' गणधर।
उनके गुरु ऋषभदेव जिनवर, मैं पूजूँ भवभय पातकहर।।56।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमित्रफल्गुगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो अघोर यानी पूर्ण शांत, महव्रत समिती गुप्ती पालें।
वे व्रतमय ब्रह्मा में चरते, अघोर ब्रह्मचर्या पालें।।
इन ऋद्धिसहित 'श्रीप्रजापति' गणधर की भक्ती करने से।
वध रोग कलह दुर्भिक्ष वैर, नशते भगवन् की भक्ती से।।57।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीप्रजापतिगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब द्वादशांग अंतर्मुहूर्त में, चिंतन करने में समरथ।
जो मनोबली ऋद्धी धारें, वे शुक्लध्यान में हों समरथ।।
'श्रीसर्वसंग' गणधर गुरुवर, इन ऋद्धि सहित भवि सुखदाता।
उनके गुरु ऋषभदेव जिनवर, को पूजत मिले सर्व साता।।58।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीसर्वसंगगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रुत द्वादशांग उच्चारण कर, पढ़ते नहिं कंठ थके उनका।
वह वचनबली ऋद्धी प्रगटे, वे मेटें जग की सर्व व्यथा।।
'श्रीवरुण' गणी को नित प्रणमूँ उनके गुरु ऋषभदेव वंदूँ।
श्रुतज्ञान पूर्ण करने हेतू, गणधर जिनवर को नित्य जजूँ।।59।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीवरुणगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिभुवन को भी अंगुलि ऊपर, जो उठा सकें वो कायबली।
नानाविध आसन कायक्लेश, करने से हो यह ऋद्धि भली।।
'धनपालक' गणधर को प्रणमूँ, सब ऋद्धि सिद्धिसुख के दाता।
उनके गुरु ऋषभदेव को नित, मैं पूजूँ मिले सौख्य साता।।60।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीधनपालगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-पद्धड़ी छंद-

औषधि ऋद्धी के आठ भेद, आमर्शौषधि यह ऋद्धि एक।
'मघवान' गणी यह ऋद्धि धरें, इन गुरु को वंदत पाप हरें।।61।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमघवानगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो क्ष्वेलौषधि ऋद्धी धरते, वे सर्वरोग संकट हरते।
गुरु 'तेजोराशी' गणधर थे, उन गुरु ऋषभेश्वर को जजते।।62।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीतेजोराशिगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुरु जल्लौषधि ऋद्धी धरंत, 'महावीर' नाम गणधर महंत।
उनके गुरु पूजूँ आदिनाथ, भवदधि डूबत को देयं हाथ।।63।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमहावीरगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो मलौषधी धरते महान्, गणईश 'महारथ' भाग्यवान्।
श्री ऋषभदेव के शिष्य मान्य, पूजत ही पावें स्वात्म साम्य।।64।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमहारथगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऋषि विप्रुष औषधि ऋद्धि धार, सब के दुःख दारिद्र करें छार।
उनके गुरु ऋषभेश्वर महान्, जो 'विशालाक्ष' गणाग्र प्रधान।।65।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीविशालाक्षगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनसे स्पर्शित नीर वायु, सब रोग हरे करते चिरायु।
सर्वोषधि धरते 'महाबाल', उनके गुरु पूजूँ जगत्पाल।।66।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमहाबालगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिससे कटु या विष व्याप्त अन्न, बस वचन मात्र से निर्विषान्न।
मुखनिर्विष युत 'शुचिसाल' साधु, उनके गुरु को पूजूँ अबाध।।67।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीशुचिसालगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो रोग विषादि समेत जीव, अवलोकन से हों स्वस्थ जीव।
दृष्टीनिर्विष 'श्रीवज्र' साधु, उन गुरु को जजते स्वात्मस्वादु।।68।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीवज्रगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आशीविष ऋद्धी जो धरंत, दुरआशिष से मरते तुरंत।
श्री 'वज्रसार' न करें प्रयोग, उन गुरु को नमते मिटे शोक।।69।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीवज्रसारगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दृष्टीविषयुत गणि 'चन्द्रचूल', करुणासागर जग के नुकूल।
उनके गुरु ऋषभेश्वर जिनिंद, मैं जजूँ बनूँ अतिशय अनिंद्य।।70।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीचंद्रचूलगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर में आया रूखा अहार, पयवत् परिणमता स्वाद धार।
श्री 'जयकुमार' गणधर नमंत, उन गुरु को पूजत सुख अनंत।।71॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीजयकुमारगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर में आया रुक्षादि अन्न, तप से बन जाता मधुर अन्न।
'महारस' गणधर के गुरु जिनेश, मैं पूजूँ पाऊँ सुख हमेश।।72।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमहारसगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-स्रग्विणी छंद-

अमृतासावि विष वस्तु अमृत करें।
उन वचन दुःखहर कर्ण अमृत भरें।।
'कच्छ' गणधर उन्हीं के नमूँ पाद को।
शिष्य जिनके उन्हें भी जजूँ भाव सों।।73।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीकच्छगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हस्ततल में रखा रुक्ष अन्नादि भी।
दिव्य वच भी अमृतसम करें तुष्टिही।।
जो 'महाकच्छ' गणधर उन्हों के प्रभू।
मैं जजूँ भक्ति से पाऊँ आनन्द भू।।74।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमहाकच्छगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'नमि' महासाधु गणधर बने नाथ के।
ऋद्धि अक्षीण भोजन मिली त्याग से।।
चक्रवर्ती कटक जीम लेवे भले।
ना घटे पाद अर्चूं सदा अर्घ्य ले।।75।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीनमिगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भू चतुष्कोण हो चार ही धनुष भी।
देव नर भी असंख्ये वहाँ तिष्ठहीं।।
नाम अक्षीण आलय महाऋद्धि से।
नाथ के शिष्य 'विनमी' जजूँ भक्ति से।।76।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीविनमिगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-गीता छंद-

'श्रीबल' गणी ऋषभदेव के, सब ऋद्धियों के नाथ हैं।
सम्पूर्ण गुण रत्नों भरें फिर भी कुछ न कुछ उन पास है।।
जिनदेव के चरणाब्ज षट्पद आत्मसुख में मग्न हैं।
उनको उन्हों के नाथ को पूजत मिले सुखकंद है।।77।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीश्रीबलगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'अतिबल' गणी ऋषभेश जिन के समवसृति में शोभते।
अठरह सहस शीलों, गुणों से आत्मसुख को पोषते।।
प्रभु भक्ति में लवलीन हो निज आत्म का चिंतन करें।
गणधर गणों से वंद्य जिनवर जजत भव भंजन करें।।78।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीअतिबलगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'श्रीभद्रबल' चउज्ञानधारी ऋद्धियों से पूर्ण हैं।
उत्तर गुणों से राजते यमदुःख करते चूर्ण हैं।।
ऋषभेश के पदपंकजों की नित्य करते वंदना।
गणधर गुरू को आदिप्रभु को पूजते दुख रंचना।।79।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीभद्रबलगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'नंदी' गणाधिप नाथ की दिव्यध्वनी सुन मोदते।
द्वादश गणों को द्वादशांगी में सतत संबोधते।।
निज शुद्ध परमानंदमय ज्ञानाब्धि में अवगाहते।
फिर भी जिनेश्वर चरण वंदे हम उन्हें शिर नावते।।80।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीनंदिगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गणधर 'महाभागी' जिनेश्वर पादपंकज ध्यावते।
बहु पुण्य संपादन करें फिर पाप पुण्य नशावते।।
निज में सुपरमाल्हाद अमृत पान कर शिव पावते।
उनके गुरू वृषभेश को हम पूजते अति चाव से।।81।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमहाभागिगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'श्रीनंदिमित्र' गणेश नित आदीश का वंदन करें।
चौरासि लक्षोत्तर गुणों से पूर्ण भव खण्डन करें।।

संपूर्ण ऋद्धि समेत फिर भी नग्नमुद्रा धारते।
उनको जजूँ जिन को नमूँ फिर तिरूँ भक्तीनाव से।।82।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीनंदिमित्रगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'श्रीकामदेव' गणीश नित तीर्थेश की भक्ती करें।
निज भक्त को तारें भवोदधि से स्वयं गुण से तिरें।।
उनके चरण को वंद कर वृषभेश की पूजन करूँ।
निज साम्य अमृत को पिऊँ यमपाश का छेदन करूँ।।83।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीकामदेवगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

'अनुपम' गणीश्वर सर्व उपमारहित अनुपम गुण धरें।
संपूर्ण लोक अलोक में निज कीर्तिवल्ली विस्तरें।।
सब ऋद्धि सिद्धि समेत फिर भी आदिजिन के भक्त थे।
हम भी जजें गणधरगुरू जिनराज को अति भक्ति से।।84।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीअनुपमगणधरदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-शंभु छंद-पूर्णार्घ्यं-

श्री ऋषभदेव के चौरासी गणधर जिनमुद्राधारी थे।
चौरासि हजार महामुनि के स्वामी अनवधि गुणधारी थे।।
श्रीऋषभसेन आदिक गणपति श्रीऋषभदेव की भक्ति करें।
गणधरगुरु नमि तीर्थकर को पूजत निज आतम पुष्ट करें।।85।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभसेनादिअनुपमपर्यंतचतुरशीतिगणधरगुरुदेववंदित-चरणाम्बुजाय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य-**ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिविभूषिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय नमः।**

(108 बार या 9 बार पुष्प या पीले तंदुल से जाप्य करें)

जयमाला

-त्रिभंगी छंद-

जय जय श्री गणधर, धर्मधुरंधर, जिनवर दिव्यध्वनी धारें।
द्वादश अंगों में, अंग बाह्य में, गूँथे ग्रन्थ रचें सारे।।

गुरु नग्न दिगंबर, सर्व हितंकर, तीर्थंकर के शिष्य खरे।
मैं नमूँ भक्ति धर, ऋद्धि निधीश्वर, मुझ शिवपथ निर्विघ्न करें।।1।।

-स्रग्विणी छंद-

मैं नमूँ मैं नमूँ नाथ गणधार को।
शील संयम गुणों के सुभंडार को।।
नाथ तेरे बिना कोई ना आपना।
शीघ्र संसार वाराशि से तारना।।2।।

ऋद्धियाँ सर्व तेरे पगों के तले।
सर्व ही सिद्धियाँ आप चरणों भले।।
नाथ तेरे बिना कोई ना आपना।
शीघ्र संसार वाराशि के तारना।।3।।

धन्य हैं धन्य हैं धन्य हैं ऋद्धियाँ।
वंदते ही फलें ये सभी सिद्धियाँ।।
मैं नमूं मैं नमूं सर्व ऋद्धीधरा।
ऋद्धियों को नमूं मैं नमूं गणधरा।।4।।

बुद्धि ऋद्धी कही हैं अठारा विधा।
विक्रिया ऋद्धियाँ हैं सुग्यारा विधा।।
है क्रियाचारणा ऋद्धि नौ भेद में।
ऋद्धि तप सात विध दीप्त तप आदि में।।5।।

ऋद्धि बल तीन विध शक्तिवर्धन करें।
औषधी आठ विध स्वास्थ्य वर्धन करें।।
ऋद्धि रस षट्विधा क्षीर अमृत स्रवे।
ऋद्धि अक्षीण दो भेद अक्षय धरें।।6।।

आठ विध ये महा ऋद्धि चौंसठ विधा।
भेद संख्यात होते सु अंतर्गता।।

---

1. अंगपूर्व के अंश-अंश के सार रूप में आज जैन ग्रंथ हैं। 2. शोकनाशिनी। 3. सुख देने वाली।

बुद्धि ऋद्धी जजें बुद्धि अतिशय धरें।
विक्रिया पूजते विक्रिया बहु करें।।7।।

चारणी ऋद्धि आकाशगामी करे।
पुष्प जल पर चलें जीव भी ना मरें।।
दीप्ततप आदि ऋद्धी धरें जो मुनी।
कांति आहार बिन भी रहे उन घनी।।8।।

तप्ततप से कभी भी न नीहार हों।
शक्ति ऐसी जगत् सौख्य करतार जो।।
क्षीरस्रावी मधुस्रावि अमृतस्रवी।
इन वचो भी बने क्षीर अमृतस्रवी।।9।।

औषधी ऋद्धि से रुग्ण नीरोग हों।
साधु तनवायु से विषरहित स्वस्थ हों।।
ऋद्धि अक्षीण से अन्न अक्षय करें।
पूजते साधु को पुण्य अक्षय भरें।।10।।

बारहों अंग पूर्वों कि रचना करी।
आज तक भी वही सार[1] में है भरी।।
नाथ तेरे बिना कोई ना आपना।
शीघ्र संसार वाराशि से तारना।।11।।

गणधरों के बिना दिव्यध्वनि ना खिरे।
पद उन्हें जो प्रभू पास दीक्षा धरें।।
नाथ तेरे बिना कोई ना आपना।
शीघ्र संसार वाराशि से तारना।।12।।

गणधरों का सुमाहात्म्य मुनि गावते।
कीर्ति गाके कोई पार ना पावते।।
नाथ तेरे बिना कोई ना आपना।
शीघ्र संसार वाराशि से तारना।।13।।

धन्य मैं धन्य मैं धन्य मैं हो गया।
धन्य जीवन सफल आज मुझ हो गया।।
नाथ तेरे बिना कोई ना आपना।
शीघ्र संसार वाराशि से तारना।।14।।

आप गणइंद्र की भक्ति शोकापहा[2]।
आप की भक्ति ही सर्वसौख्यावहा[3]।।
नाथ तेरे बिना कोई ना आपना।
शीघ्र संसार वाराशि से तारना।।15।।

पूरिये नाथ मेरी मनोकामना।
'ज्ञानमति' पूर्ण हो सुख असाधारणा।।
नाथ तेरे बिना कोई ना आपना।
शीघ्र संसार वाराशि से तारना।।16।।

–दोहा–

चौबीसों तीर्थेश के, गणधर गुण आधार।
नमूँ नमूँ उनके चरण, मिले स्वात्मनिधिसार।।20।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरस्य वृषभसेनादिचतुरशीतिगणधरचरणेभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–नरेन्द्र छंद–

ऋषभदेव के समवसरण को, जो जन पूजें रुचि से।
मनवांछित फल को पा लेते, सर्व दुखों से छुटते।।
धर्मचक्र के स्वामी बनते, तीर्थंकर पद पाते।
केवल 'ज्ञानमती' किरणों से भविमन ध्वांत नशाते।।1।।

।।इत्याशीर्वादः।।

पूजा नं.-4

सर्वसाधु पूजा

-अथ स्थापना-गीता छंद-

जो साधु तीर्थंकर समवसृति में सदा ही तिष्ठते।
वे सात भेदों में रहें निज मुक्तिकांता प्रीति तें।।
ऋषि पूर्वधर शिक्षक अवधिज्ञानी प्रभू केवलि वहां।
विक्रियाधारी विपुलमतिवादी उन्हें पूजूँ यहाँ।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितसर्वऋषिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितसर्वऋषिसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितसर्वऋषिसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथ अष्टक-नाराच छंद

साधु चित्त के समान स्वच्छ नीर लाइये।
साधु चर्ण धार देय पाप पंक क्षालिये।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि आपको स्वयं वरे।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितसर्वऋषिभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वर्ण कांति के समान पीत गंध लाइये।
साधु चर्ण चर्चते समस्त ताप नाशिये।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि आपको स्वयं वरे।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितसर्वऋषिभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

चंद्ररश्मि के समान धौतशालि लाइये।
चर्ण के समीप पुंज देत सौख्य पाइये।।

प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि आपको स्वयं वरे।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितसर्वऋषिभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कल्पवृक्ष के सुगंधि पुष्प थाल में भरें।
कामदेव के जयी मुनीन्द्र पाद में धरें।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि आपको स्वयं वरे।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितसर्वऋषिभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पूरिका इमर्तियाँ सुवर्ण थाल में भरें।
भूख व्याधि नाश हेतु आप अर्चना करें।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि आपको स्वयं वरे।।5।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितसर्वऋषिभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नदीप में कपूर ज्योति को जलाइये।
साधुवृंद पूजते सुज्ञान ज्योति पाइये।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि आपको स्वयं वरे।।6।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितसर्वऋषिभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट गंध अति सुगंध धूप खेय अग्नि में।
अष्ट कर्म भस्म होत आप भक्ति रंग में।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि आपको स्वयं वरे।।7।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितसर्वऋषिभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सेब आम संतरा बदाम थाल में भरे।
पूजते ही आप चर्ण मुक्तिअंगना वरें।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि आपको स्वयं वरे।।8।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितसर्वऋषिभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीर गंध आदि से सुवर्ण पुष्प मेलिया।
सुख अनंत हेतु आप पाद में समर्पिया।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि आपको स्वयं वरे।।9।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितसर्वऋषिभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

गुरुपद में धारा करूँ, चउसंघ शांती हेत।
शांतीधारा जगत में, आत्यंतिक सुख हेत।।10।।

शांतये शांतिधारा।

चंपक हरसिंगार बहु, पुष्प सुगंधित सार।
पुष्पांजलि से पूजते, होवे सौख्य अपार।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ्य

–सोरठा–

द्विविध मोक्षपथ मूल, अट्ठाइस हैं मूलगुण।
साध करें अनुकूल, अतः साधु कहलावते।।1।।

इति मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

चाल –वंदों दिगम्बर गुरुचरण.....

श्री ऋषभ जिनके पूर्वधर, सब पूर्व ज्ञानी ख्यात।
उन कही संख्या चार सहस सु सात सौ पच्चास।।
इन भक्ति से ही भव्यजन, निज लहें ज्ञान अखीर[1]।
इन साधु को मैं हृदय धारूँ, करें भवदधि तीर।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभनाथतीर्थंकरस्य पंचाशदधिकचतुःसहस्रसप्तशत-पूर्वधरऋषिभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीऋषभ के शिक्षकमुनी, इक शतक चार हजार।
पुनरपि पचास गिने गये, इनसे खुले शिवद्वार।।

1. ज्ञान का अंत-अनंतज्ञान।

इन भक्ति से ही भव्यजन, निज लहें ज्ञान अखीर।
इन साधु को मैं हृदय धारूँ, करें भवदधि तीर।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभनाथस्य पंचाशदधिकचतुःसहस्रएकशतशिक्षक-ऋषिभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुरुदेव के ऋषि अवधिज्ञानी, नौ हजार प्रमाण।
इन पूजते भव व्याधि का हो, शीघ्र ही अवसान[1]।।
इन भक्ति से ही भव्यजन, निज लहें ज्ञान अखीर।
इन साधु को मैं हृदय धारूँ, करें भवदधि तीर।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभनाथस्य नवसहस्रअवधिज्ञानिऋषिभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुरुदेव के मुनि केवली हैं बीस सहस प्रमाण।
इन भक्ति नौका जो चढ़ें वे लहें पद निर्वाण।।
इन भक्ति से ही भव्यजन, निज लहें ज्ञान अखीर।
इन साधु को मैं हृदय धारूँ, करें भवदधि तीर।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभनाथस्य विंशतिसहस्रकेवलज्ञानिऋषिभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीतिस्वाहा।

विक्रियाधारक मुनि वहाँ छह शतक बीस हजार।
वे भव्यजन की तृप्त करते तरण तारणहार।।
इन भक्ति से ही भव्यजन, निज लहें ज्ञान अखीर।
इन साधु को मैं हृदय धारूँ, करें भवदधि तीर।।5।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभनाथस्य विंशतिसहस्रषट्शतकविक्रियाधारिऋषिभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनि विपुलमति बारह सहस अरु, सात शतक पचास।
ये मनःपर्यय ज्ञान से नित करें भुवन प्रकाश।।
इन भक्ति से ही भव्यजन, निज लहें ज्ञान अखीर।
इन साधु को मैं हृदय धारूँ, करें भवदधि तीर।।6।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभनाथस्य पंचाशदधिकद्वादशहस्रसप्तशतविपुलमतिज्ञानि-ऋषिभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

1.अंत

वादी मुनी बारह सहस अरु सात शतक पचास।
ये वाद करने में कुशल नित करें धर्म प्रकाश।।
इन भक्ति से ही भव्यजन, निज लहें ज्ञान अखीर।
इन साधु को मैं हृदय धारूँ, करें भवदधि तीर।।7।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभनाथस्य पंचाशदधिकद्वादशहस्रसप्तशतवादिऋषिभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-पूर्णार्घ्य-दोहा-

समवसरण में ऋषभ के, ऋषि चौरासि हजार।
नमूँ नमूँ मैं अर्घ ले, जजूँ खुले शिवद्वार।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभनाथस्य चतुरशीतिसहस्रऋषिभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। पुष्पांजलिः।

जाप्य-**ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिविभूषिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय नमः।**

(108 बार या 9 बार पुष्प या पीले तंदुल से जाप्य करें)

जयमाला

त्रिभंगी छंद

जय जय सब मुनिगण, भूषित गुणमणि, मूलोत्तर गुण पूर्ण भरें।
जय नग्न दिगम्बर मुक्ति वधूवर, सुरपति नरपति चरण परें।।
मैं पूजूँ तुमको, नित सुमती दो, पाप पुंज अंधेर टले।
होवे सब साता, मिटे असाता, पुण्य राशि हो ढेर भले।।1।।

-नाराच छंद-

नमूँ नमूँ मुनीश! आप पाद पद्म भक्ति से।
भवीक वृंद आप ध्याय कर्म पंक धोवते।।
अनाथ नाथ! भक्त की सदा सहाय कीजिये।
प्रभो! मुझे भवाब्धि से अबे निकाल लीजिये।।2।।

अठाइसों हि मूलगुण धरें दया निधान हैं।
अठारहों सहस्र शील धारते महान हैं।।

अनाथ नाथ! भक्त की सदा सहाय कीजिये।
प्रभो! मुझे भवाब्धि से अबे निकाल लीजिये।।3।।

चुरासि लाख उत्तरी गुणों कि आप खान हैं।
समस्त योग साधते अनेक रिद्धिमान हैं।।
अनाथ नाथ! भक्त की सदा सहाय कीजिये।
प्रभो! मुझे भवाब्धि से अबे निकाल लीजिये।।4।।

समस्त अंगपूर्व ज्ञान सिंधु में नहावते।
निजात्म सौख्य अमृतैक पूर स्वाद पावते।।
अनाथ नाथ! भक्त की सदा सहाय कीजिये।
प्रभो! मुझे भवाब्धि से अबे निकाल लीजिये।।5।।

अनेक विध तपश्चरण करो न खेद है तुम्हें।
अनंत ज्ञानदर्श वीर्य प्राप्ति कामना तुम्हें।।
अनाथ नाथ! भक्त की सदा सहाय कीजिये।
प्रभो! मुझे भवाब्धि से अबे निकाल लीजिये।।6।।

सु तीन रत्न से महान आप रत्न खान हैं।
अनेक रिद्धि सिद्धि से सनाथ पुण्यवान हैं।।
अनाथ नाथ! भक्त की सदा सहाय कीजिये।
प्रभो! मुझे भवाब्धि से अबे निकाल लीजिये।।7।।

परीषहादि आप से डरें न पास आवते।
तुम्हीं समर्थ काम मोह मृत्यु मल्ल मारते।।
अनाथ नाथ! भक्त की सदा सहाय कीजिये।
प्रभो! मुझे भवाब्धि से अबे निकाल लीजिये।।8।।

बिहार हो जहाँ जहाँ सु आप तिष्ठते जहाँ।
सुभिक्ष क्षेम हो सदैव ईति भीति ना वहाँ।।
अनाथ नाथ! भक्त की सदा सहाय कीजिये।
प्रभो! मुझे भवाब्धि से अबे निकाल लीजिये।।9।।

सुधन्य धन्य पुण्यभूमि आपसे हि तीर्थ हो।
सुरेंद्र चक्रवर्ति वंद्य भूमि भी पवित्र हो।।

अनाथ नाथ! भक्त की सदा सहाय कीजिये।
प्रभो! मुझे भवाब्धि से अबे निकाल लीजिये।।10।।

जयो जयो मुनीश! आप भक्ति मोह को हरे।
जयो मुनीश! आप भक्त आत्मशक्ति को धरें।।
अनाथ नाथ! भक्त की सदा सहाय कीजिये।
प्रभो! मुझे भवाब्धि से अबे निकाल लीजिये।।11।।

अपूर्व मोक्षमार्ग युक्ति पाय मुक्ति को वरें।
पुनर्भवों से छूटके सु पंचमी गती धरें।।
अनाथ नाथ! भक्त की सदा सहाय कीजिये।
प्रभो! मुझे भवाब्धि से अबे निकाल लीजिये।।12।।

मुनीश! आप पास आय स्वात्म तत्त्व पा लिया।
समस्त कर्म शून्य ज्ञान पुंज आत्म जानिया।।
अनाथ नाथ! भक्त की सदा सहाय कीजिये।
प्रभो! मुझे भवाब्धि से अबे निकाल लीजिये।।13।।

–दोहा–

छट्ठे गुणस्थान से, चौदहवें तक मान्य।
नमूँ नमूँ सब साधु को, मिले 'ज्ञानमति' साम्य।।14।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितप्रमत्तादिअयोगिगुणस्थान-पर्यंतसर्वऋषिभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–नरेन्द्र छंद–

ऋषभदेव के समवसरण को, जो जन पूजें रुचि से।
मनवांछित फल को पा लेते, सर्व दुखों से छुटते।।
धर्मचक्र के स्वामी बनते, तीर्थंकर पद पाते।
केवल 'ज्ञानमती' किरणों से भविमन ध्वांत नशाते।।1।।

।।इत्याशीर्वादः।।

पूजा नं.-5

आर्यिका पूजा

–अथ स्थापना-गीता छंद–

श्री ऋषभप्रभु के समवसृति में आर्यिकायें मान्य हैं।
गणिनी प्रथम श्रीमात ब्राह्मी सर्व में हि प्रधान हैं।।
व्रतशील गुण से मंडिता इंद्रादि से पूज्या इन्हें।
आह्वान करके पूजहूँ त्रयरत्न से युक्ता तुम्हें।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितगणिनीब्राह्मीप्रमुखसर्वार्यिकासमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितगणिनीब्राह्मीप्रमुखसर्वार्यिकासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवसमवसरणस्थितगणिनीब्राह्मीप्रमुखसर्वार्यिकासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथ अष्टक–गीता छंद

गंगा नदी का नीर शीतल स्वर्ण झारी में भरूँ।
निज कर्ममल को धोवने हित मात पद धारा करूँ।।
सद्धर्म कन्या आर्यिकाओं की सदा पूजा करूँ।
माता चरण वंदन करूँ निज आत्म की रक्षा करूँ।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरसमवसरणस्थितगणिनीब्राह्मीप्रमुख-सर्वार्यिकाचरणेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरी चंदन सुगंधित घिस कटोरी में भरूँ।
तुम पाद पंकज चर्चते भवताप की बाधा हरूँ।।
सद्धर्म कन्या आर्यिकाओं की सदा पूजा करूँ।
माता चरण वंदन करूँ निज आत्म की रक्षा करूँ।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरसमवसरणस्थितगणिनीब्राह्मीप्रमुख-सर्वार्यिकाचरणेभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल अखंडित शालि तंदुल धोय थाली में भरूँ।
तुम पाद सन्निध पुंज धरते सर्व दुख का क्षय करूँ।।
सद्धर्म कन्या आर्यिकाओं की सदा पूजा करूँ।
माता चरण वंदन करूँ निज आत्म की रक्षा करूँ।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरसमवसरणस्थितगणिनीब्राह्मीप्रमुख-सर्वार्यिकाचरणेभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

चंपा चमेली केवड़ा अरविंद सुरभित पुष्प से।
तुम पाद कुसुमावलि किये यश सुरभि फैले चहुँदिशे।।
सद्धर्म कन्या आर्यिकाओं की सदा पूजा करूँ।
माता चरण वंदन करूँ निज आत्म की रक्षा करूँ।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरसमवसरणस्थितगणिनीब्राह्मीप्रमुख-सर्वार्यिकाचरणेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मोदक इमरती सेमई पायस पुआ पकवान से।
तुम पाद पंकज पूजते क्षुध रोग मुझ तुरतहिं नशे।।
सद्धर्म कन्या आर्यिकाओं की सदा पूजा करूँ।
माता चरण वंदन करूँ निज आत्म की रक्षा करूँ।।5।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरसमवसरणस्थितगणिनीब्राह्मीप्रमुख-सर्वार्यिकाचरणेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर ज्योती रजत दीपक में जला आरति करूँ।
अज्ञानतम को दूर कर निज ज्ञान की ज्योती भरूँ।।
सद्धर्म कन्या आर्यिकाओं की सदा पूजा करूँ।
माता चरण वंदन करूँ निज आत्म की रक्षा करूँ।।6।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरसमवसरणस्थितगणिनीब्राह्मीप्रमुख-सर्वार्यिकाचरणेभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंध धूप सुगंध खेकर कर्म अरि भस्मी करूँ।
तुम पाद पंकज पूजते निज आत्म की शुद्धी करूँ।।

सद्धर्म कन्या आर्यिकाओं की सदा पूजा करूँ।
माता चरण वंदन करूँ निज आत्म की रक्षा करूँ।।7।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरसमवसरणस्थितगणिनीब्राह्मीप्रमुख-सर्वार्यिकाचरणेभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अंगूर सेब अनार केला आम फल को अर्पते।
निज आत्म अनुभव सुख सरस फल प्राप्त हो तुम पूजते।।
सद्धर्म कन्या आर्यिकाओं की सदा पूजा करूँ।
माता चरण वंदन करूँ निज आत्म की रक्षा करूँ।।8।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरसमवसरणस्थितगणिनीब्राह्मीप्रमुख-सर्वार्यिकाचरणेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध तंदुल पुष्प नेवज दीप धूप फलादि से।
मैं अर्घ अर्पण करूँ माता! आपको अति भक्ति से।।
सद्धर्म कन्या आर्यिकाओं की सदा पूजा करूँ।
माता चरण वंदन करूँ निज आत्म की रक्षा करूँ।।9।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरसमवसरणस्थितगणिनीब्राह्मीप्रमुख-सर्वार्यिकाचरणेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

व्रत गुण मंडित मात के, चरणों में त्रय बार।
शांतीधारा मैं करूँ, होवे शांति अपार।।10।।

शांतये शांतिधारा।

वकुल मल्लिका केवड़ा, सुरभित हरसिंगार।
पुष्पांजलि चरणों करूँ, करूँ स्वात्म शृंगार।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ

–सोरठा–

महाव्रतादी श्रेष्ठ, गुण भूषण को धारतीं।
पूजूँ भक्ति समेत, पुष्पांजलि करके यहाँ।।1।।

इति मंडलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

श्री ऋषभदेव के समवसरण में, ब्राह्मी-गणिनी मानी हैं।
श्री ऋषभदेव की पुत्री ये, साध्वी में प्रमुख बखानी हैं।।
रत्नत्रय गुणमणि से भूषित, ये शुभ्र वस्त्र को धारे हैं।
इनकी पूजा वंदन भक्ती, हमको भवदधि से तारे है।।1।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरसमवसरणस्थितप्रथमगणिनीब्राह्मीमात्रे अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुंदरी आर्यिका मात आदि, त्रय लाख पचास हजार कही।
मूलोत्तर गुण से भूषित ये, इन्द्रादिक से भी पूज्य कहीं।।
इनकी भक्ती पूजा करके, हम त्याग धर्म को यजते हैं।
संसार जलधि से तिरने को, आर्यिका मात को नमते हैं।।2।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकरसमवसरणस्थितत्रयलक्षपंचाशत्सहस्रसुन्दरी-प्रमुखार्यिकाचरणेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री ऋषभदेव का समवसरण, श्रावक सम्यक्त्वी अणुव्रती।
ये तीन लाख माने हैं उत्तम, भव्य धर्म में अति प्रीती।।
इन सबमें श्रोता प्रमुख, चक्रवर्ती भरतेश्वर कहलाये।
इन सबसे वंदित प्रभु पद में, हम अर्घ्य चढ़ाकर शिर नाएँ।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणस्थितत्रयलक्षश्रावकवंदितपादपद्माय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आदीश्वर जिनके समवसरण में, धर्मलीन श्राविका कहीं।
ये पाँच लाख सम्यग्दृष्टी, जिनवर पूजा में लीन रहीं।।
इनसे वंदित प्रभुपाद कमल, हम उनकी पूजा करते हैं।
तीर्थंकर प्रभु की भक्ती से, जन भववारिधि से तिरते हैं।।4।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणस्थितपंचलक्षश्राविकावंदितपादपद्माय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-दोहा-

कल्पवासिनी देवियाँ, सुनें प्रभू से धर्म।
सम्यग्दृष्टी भव्य वे, पाती शिवपथ मर्म।।5।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणस्थितागणितकल्पवासिनीदेवीवंदितपादपद्माय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अगणित ज्योतिष देवियाँ, समवसरण में आय।
धर्मामृत का पान कर, नित पूजें प्रभु पाय।।6।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणस्थितागणितज्योतिष्कदेवीवंदितपादपद्माय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समवसरण में ध्वनि सुनें, व्यंतर देवी नित्य।
उनसे पूजित प्रभु चरण, मैं भी पूजूँ नित्य।।7।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणस्थितागणितव्यंतरदेवीवंदितपादपद्माय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवनवासि की देवियाँ, आवें संख्यातीत।
समवसरण में ध्वनि सुनें, करें धर्म से प्रीत।।8।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणस्थितागणितभवनवासिनीदेवीवंदितपादपद्माय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवनवासि सब देवगण, पीते धर्मपियूष।
समवसरण में भव्य वे, पा लेते निज रूप।।9।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणस्थितागणितभवनवासीदेववंदितपादपद्माय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

व्यंतरदेवों से नमित, तीर्थंकर भगवान।
प्रभु की भक्ती भव्य को, देती सम्यग्ज्ञान।।10।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणस्थितागणितव्यंतरदेववंदितपादपद्माय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्योतिषदेव असंख्य ही, प्रभु की भक्ति करंत।
सम्यक् ज्योती पायके, भवदधि शीघ्र तरंत।।11।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणस्थितागणितज्योतिष्कदेववंदितपादपद्माय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कल्पवासि सब देवगण, प्रभु पूजा में लीन।
सम्यग्दृष्टी भव्य वे, करें कर्म को क्षीण।।12।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणस्थितागणितकल्पवासीदेववंदितपादपद्माय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पशू, पक्षीगण प्रभु भक्त।
समवसरण में धर्म सुन, होते सम्यक्वन्त।।13।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणस्थितागणितपशु-पक्षिवंदितपादपद्माय श्रीऋषभदेव-तीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-पूर्णार्घ्यं-

द्वादशगण वेष्टित प्रभो! चतुर्मुखी[1] भगवान।
भक्ति भाव से नित जजूँ, बनूँ स्वात्मनिधिमान।।14।।

ॐ ह्रीं समवसरणस्थितद्वादशगणवंदितपादपद्माय श्री ऋषभदेवतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य-**ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिविभूषिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय नमः।**
(108 बार या 9 बार पुष्प या पीले तंदुल से जाप्य करें)

जयमाला

–त्रिभंगी छंद–

जय जय जिनश्रमणी, गुणमणि धरणी, नारि शिरोमणि सुरवंद्या।
जय रत्नत्रयधनि, परम तपस्विनि, स्वात्मचिंतवनि त्रय संध्या।।
मुनि सामाचारी, सर्व प्रकारी, पालनहारी अहर्निशी।
मैं पूजूँ ध्याऊँ, तुम गुण गाऊँ, निजपद पाऊँ ऊर्ध्वदिशी।।1।।

–स्रग्विणी छंद–

धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।
आप सम्यक्त्व से शुद्ध निर्दोष हो।
शास्त्र के ज्ञान से पूर्ण उद्योत हो।।2।।

शुद्ध चारित्र संयम धरा आपने।
श्रेष्ठ बारह विधा तप चरा आपने।।

1. मुख एक ही रहता है किन्तु चारों तरफ दिखता है।

धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।3।।

एक साड़ी परिग्रह रहा शेष है।
केशलुंचन करो आर्यिका वेष है।।
धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।4।।

आतपन आदि बहु योग को धारतीं।
क्रोध कामारि शत्रू सदा मारतीं।।
धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।5।।

अंग ग्यारह सभी ज्ञान को धारतीं।
मात! हो आप ही ज्ञान की भारती।।
धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।6।।

भक्तजनवत्सला धर्म की मूर्ति हो।
जो जजें आपको आश की पूर्ति हो।।
धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।7।।

मात ब्राह्मी प्रमुख आर्यिका साध्वियाँ।
अन्य भी जो हुई हैं महासाध्वियाँ।।
धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।8।।

चंद्र सम कीर्ति उज्ज्वल दिशा व्यापती।
सूर्य सम तेज से पाप तम नाशतीं।।
धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।9।।

सिंधुसम आप गांभीर्य गुण से भरीं।
मेरु सम धैर्य भू-सम क्षमा गुण भरीं।।
धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।10।।

बर्फ सम स्वच्छ शीतल वचन आपके।
श्रेष्ठ लज्जादि गुण यश कहें आपके।।
धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।11।।

आर्यिका वेष से मुक्ति होवे नहीं।
संहनन श्रेष्ठ बिन कर्म नशते नहीं।।
धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।12।।

सोलवें स्वर्ग तक इंद्र पद को लहें।
फेर नर तन धरें साधु हों शिव लहें।।
धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।13।।

जैन सिद्धांत की मान्यता है यही।
संहनन श्रेष्ठ बिन शुक्ल ध्यानी नहीं।।
धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।14।।

अंबिके! आपके नाम की भक्ति से।
शील सम्यक्त्व संयम पलें शक्ति से।।
धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।15।।

आत्मगुण पूर्ति हेतू जजूँ मैं सदा।
नित्य वंदामि करके नमूँ मैं मुदा।।

धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।16।।

'ज्ञानमति' पूर्ण हो याचना एक ही।
अंब! पूरो अबे देर कीजे नहीं।।
धन्य धन्या मही आर्यिकायें जहाँ।
मैं नमूँ मैं नमूँ मात! तुमको यहाँ।।17।।

–घत्ता–

जय जय जिन साध्वी, समरस माध्वी, तुममें गुणमणि रत्न भरें।
तुम अतुलित महिमा, पुण्य सुगरिमा, हम पूजें निज सौख्य भरें।।8।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभदेवतीर्थंकर समवसरणस्थितब्राह्मीप्रमुखत्रयलक्षपंचाशत्सहस्रआर्यिकाचरणेभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–नरेन्द्र छंद–

ऋषभदेव के समवसरण को, जो जन पूजें रुचि से।
मनवांछित फल को पा लेते, सर्व दुखों से छुटते।।
धर्मचक्र के स्वामी बनते, तीर्थंकर पद पाते।
केवल 'ज्ञानमती' किरणों से भविमन ध्वांत नशाते।।1।।

।।इत्याशीर्वादः।।

बड़ी जयमाला

-दोहा-

अति अद्भुत लक्ष्मी धरें, समवसरण प्रभु आप।
तुम धुनि सुन भविवृन्द नित, हरें सकल संताप।।1।।

-शंभु छंद-

जय जय त्रिभुवनपति का वैभव, अन्तर का अनुपम गुणमय है।
जो दर्श ज्ञान सुख वीर्यरूप, आनन्त्य चतुष्टय निधिमय है।।
बाहर का वैभव समवसरण, जिसमें असंख्य रचना मानीं।
जब गणधर भी वर्णन करते, थक जाते मनपर्यय ज्ञानी।।2।।

यह समवसरण की दिव्यभूमि, इक हाथ उपरि पृथ्वीतल से।
द्वादश योजन उत्कृष्ट कही, इक योजन हो घटते क्रम से।।
यह भूमि कमल आकार कही, जो इन्द्रनीलमणि निर्मित है।
है गंधकुटी इस मध्य सही, जो कमल कर्णिका सदृश है।।3।।

पंकज के दल सम बाह्य भूमि, जो अनुपम शोभा धारे है।
इस समवसरण का बाह्य भाग, जो अनुपम शोभा धारे है।।
सब बीस हजार हाथ ऊँचा, यह समवसरण अतिशय शोभे।
एकेक हाथ ऊँची सीढ़ी, सब बीस हजार प्रमित शोभे।।4।।

पंगू अन्धे रोगी बालक, औ वृद्ध सभी जन चढ़ जाते।
अंतर्मुहूर्त के भीतर ही, यह अतिशय जिनआगम गाते।।
इसमें शुभ चार दिशाओं में, अति विस्तृत महावीथियाँ हैं।
वीथी में मानस्तम्भ कहे, जिनकी कलधौत पीठिका हैं।।5।।

इक योजन से कुछ अधिक तुँग, बारह योजन से दिखते हैं।
इनमें हैं दो हजार पहलू, स्फटिक मणी के चमके हैं।।
उनमें चारों दिश में ऊपर, सिद्धों की प्रतिमाएँ राजें।
मनस्तम्भों की सीढ़ी पर लक्ष्मी की मूर्ति अतुल राजें।।6।।

ये अस्सी कोशों तक सचमुच, अपना प्रकाश फैलाते हैं।
जो इनका दर्शन करते हैं, वे निज अभिमान गलाते हैं।।
ये प्रभु का सन्निध्य पा करके, ही मान गलित कर पाते हैं।
अतएव सभी अतिशय भगवन्! तेरा ही गुरुजन गाते हैं।।7।।

प्रभु समवसरण में द्वादश गण, बैठे क्रम से ध्वनि सुनें सभी।
पहले में गणधर गण मुनिगण, दूजे में कल्पवासि देवी।।
तीजे में आर्यिका श्राविकायें, चौथे में भवनवासि देवी।
पंचम में व्यंतरनी, छट्ठे में बैठी ज्योतिष्की देवी।।8।।

सप्तम में भावनसुर, अष्टम में व्यंतर, नवमें ज्योतिष सुर।
दशवें में कल्पवासि सुर हैं, ग्यारहवें चक्री श्रावक नर।।
बारहवें में पशुगण बैठे, सब बाधा रहित बैठते हैं।
संख्यात मनुज तिर्यंच, असंख्याते सुरवृंद तिष्ठते हैं।।9।।

अठरह महाभाषा सातशतक, क्षुद्रक भाषामय दिव्य धुनी।
उस अक्षर अनक्षरात्मक को, संज्ञी जीवों ने आन सुनी।।
तीनों संध्या कालों में वह, त्रय त्रय मुहूर्त स्वयमेव खिरे।
गणधर चक्री अरु इन्द्रों के, प्रश्नोंवश अन्य समय भि खिरे।।10।।

भव्यों के कर्णों में अमृत, बरसाती शिवसुखदानी है।
चैतन्य सुधारस की झरणी, दुखहरणी यह जिनवाणी है।।
जन चार कोश तक उसे सुनें, निज निज के सब कर्त्तव्य गुने।
नित ही अनंत गुण श्रेणिरूप परिणाम शुद्ध कर कर्म हने।।11।।

छह द्रव्य पाँच है अस्तिकाय, अरु तत्त्व सात नव पदार्थ भी।
इनको कहती ये दिव्यध्वनि, सब जन हितकर शिवमार्ग सभी।।
आनन्त्य अर्थ के ज्ञान हेतु जो बीज पदों का कथन करे।
अतएव अर्थकर्ता जिनवर उनकी ध्वनि मेघ समान खिरे।।12।।

उन बीजपदों में लीन अर्थ प्रतिपादक बारह अंगों को।
गणधर गूँथे अतएव ग्रंथकर्ता मानें वंदूँ उनको।।
जिन श्रुत ही महातीर्थ उत्तम, उसके कर्ता तीर्थंकर हैं।
वे सार्थक नाम धरें जग में, इससे तिरते भवसागर हैं।।13।।

जय जय प्रभुवाणी कल्याणी, गंगाजल से भी शीतल है।
जय जय शमगर्भित अमृतमय, हिमकण से भी अति शीतल है।
चंदन अरु मोतीहार चंद्रकिरणों से भी शीतलदायी।
स्याद्वादमयी प्रभु दिव्यध्वनी, मुनिगण को अतिशय सुखदायी।।14।।

वस्तू में धर्म अनंत कहे, उन एक एक धर्मों को जो।
यह सप्तभंगि अद्भुत कथनी, कहती है सात तरह से जो।।
प्रत्येक वस्तु में विधि निषेध, दो धर्म प्रधान गौण मुख से।
वे सात तरह से हों वर्णित, नहिं भेद अधिक अब हो सकते।।15।।

प्रत्येक वस्तु है अस्तिरूप, अरु नास्तिरूप भी है वो ही।
वो ही है उभयरूप समझो, फिर अवक्तव्य भी है वो ही।।
वो अस्तिरूप अरु अवक्तव्य, फिर नास्ति अवक्तव भंग धरे।
फिर अस्तिनास्ति अरु अवक्तव्य, ये सात भंग हैं खरे खरे।।16।।

इस सप्तभंगमय सिंधू में, जो नित अवगाहन करते हैं।
वे मोह राग द्वेषादि रूप, सब कर्म कालिमा हरते हैं।।
वे अनेकांतमय वाक्य सुधा, पीकर आतमरस चखते हैं।
फिर परमानंद परमज्ञानी होकर, शाश्वत सुख भजते हैं।।17।।

मैं निज अस्तित्व लिये हूँ नित, मेरा पर में अस्तित्व नहीं।
मैं चिच्चैतन्य स्वरूपी हूँ, पुद्गल से मुझ नास्तित्व सही।।
इस विध निज को निज के द्वारा, निज में ही पाकर रम जाऊँ।
निश्चयनय से सब भेद मिटा, सब कुछ व्यवहार हटा पाऊँ।।18।।

भगवन्! कब ऐसी शक्ति मिले, श्रुतदृग से निज को अवलोकूँ।
फिर स्वसंवेद्य निज आतम को, निज अनुभव द्वारा मैं खोजूँ।।

संकल्प विकल्प सभी तज के, बस निर्विकल्प मैं बन जाऊँ।
फिर केवल 'ज्ञानमती' से ही, निज को अवलोकूँ सुख पाऊँ।।19।।

–दोहा–

जिनवर समवसरण अतुल, अतिशय गंगा तीर्थ।
इसमें अवगाहन करूँ, बन जाऊँ जग तीर्थ।।20।।

ॐ ह्रीं अर्हं समवसरणविभूतिमंडिताय श्रीऋषभदेवतीर्थंकराय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–नरेन्द्र छंद–

ऋषभदेव के समवसरण को, जो जन पूजें रुचि से।
मनवांछित फल को पा लेते, सर्व दुखों से छुटते।।
धर्मचक्र के स्वामी बनते, तीर्थंकर पद पाते।
केवल 'ज्ञानमती' किरणों से भविमन ध्वांत नशाते।।1।।

।।इत्याशीर्वादः।।

प्रशस्ति

-शंभु छंद-

श्री ऋषभदेव को वंदन कर, श्री वीरप्रभू के चरण नमूँ।
श्री गौतम गणधर देव नमूँ, श्री सरस्वती माँ को प्रणमूँ।।
श्री ऋषभदेव की जन्मभूमि, वरतीर्थ अयोध्या को प्रणमूँ।
प्रभु दीक्षा अरु कैवल्यभूमि, शुभ जैन प्रयाग तीर्थ प्रणमूँ।।1।।

फाल्गुन कृष्णा एकादशि को, कैवल्यज्ञान से धन्य किया।
इस युग में पहला समवसरण, धनपति ने रचकर पुण्य लिया।।
वटवृक्ष तले केवलज्ञानी, अक्षयवटवृक्ष प्रसिद्ध हुआ।
शत इंद्र भरत चक्री श्रोता, गणधर गुरु वंदित तीर्थ हुआ।।2।।

श्री ऋषभदेव जिन तपस्थली, यह जैन तीर्थ जग मान्य बना।
द्वादशवर्षीय महाकुंभ, मस्तकाभिषेक सब मान्य घना।।
श्री ऋषभदेव का समवसरण, पूजा विधान सुंदर रचना।
सब करो करावो भव्यवृंद, पावोगे इच्छित सौख्य घना।।3।।

श्री मूलसंघ में कुंदकुंद आम्नाय सरस्वति गच्छ कहा।
विख्यात बलात्कारगण से, गुरु आम्नायों में मुख्य रहा।।
इस परम्परा के आचार्यों का, मैं नित वंदन करती हूँ।
बीसवीं सदी के प्रथम सूरि, श्री शांतिसिंधु को नमती हूँ।।4।।

उन पट्टाचार्य सुशिष्य प्रथम, श्री वीरसागराचार्य हुए।
गुरुवर्य आर्यिका दीक्षा दे मुझ ज्ञानमती[1] को धन्य किये।।
वीराब्द पच्चीस सौ उनतालिस[2], वर माघ शुक्ल दशमी तिथि में।
'ऋषभेश्वर समवसरणविधान' रचना को पूर्ण किया मैंने।।5।।

-दोहा-

हस्तिनागपुर में हुए, शांतिनाथ भगवान।
कुंथुनाथ अरनाथ के, चार-चार कल्याण।।6।।

1. वैशाख कृ. 2, सन् 1956 में आर्यिका दीक्षा हुई है। 2. वीर सं. 2539, दिनाँक 20-2-2013।

तीनों तीर्थंकर प्रभू, कामदेव चक्रीश।
तीन तीन पद के धनी, नमूँ नमूँ नत शीश।।7।।

जब तक जग में रवि शशी, तब तक श्री जिनधर्म।
यह विधान कृति जगत को, देवे शिवपथ मर्म।।8।।

भजन

-आर्यिका चन्दनामती

तर्ज-माई रे माई.....

ऋषभदेव के समवसरण का अतिशय कैसा छाया।
ज्ञानमती माता ने विश्व में, धर्म का अलख जगाया।
बोलो जय जय जय.....

आज विश्व को ऋषभदेव का है सन्देश सुनाना।
प्राणिमात्र को जैनधर्म का हितकर मार्ग बताना।।
जिओ और जीने दो सबको, प्रभु ने यही सिखाया।
ज्ञानमती माता ने विश्व में, धर्म का अलख जगाया।
बोलो जय जय जय.....।।1।।

आज नहीं साक्षात् प्रभू का समवसरण बनता है।
फिर भी कृत्रिम समवसरण में प्रभु दर्शन मिलता है।।
दर्शन करके श्री जिनवर का, नर तन सफल बनाया।
ज्ञानमती माता ने विश्व में, धर्म का अलख जगाया।
बोलो जय जय जय.....।।2।।

"जैन" मात्र इक धर्म है इसको सम्प्रदाय मत समझो।
इसका लक्ष्य जितेन्द्रियता का पाठ पढ़ाना समझो।।
यह पावन संदेश 'चन्दनामती', सभी ने पाया।
ज्ञानमती माता ने विश्व में, धर्म का अलख जगाया।
बोलो जय जय जय.....।।3।।

आरती

-आर्यिका चन्दनामती

तर्ज-तन डोले.....

प्रभु ऋषभदेव के समवसरण की, मंगल दीप प्रजाल के,
मैं आज उतारूं आरतिया।।

समवसरण के बीच प्रभू जी, नासादृष्टि विराजे।
गणधर मुनि नरपति से शोभित, बारह सभा सुराजे।।प्रभू जी.....
ओंकार ध्वनि, सुन करके मुनि, रत रहें स्व पर कल्याण में,
मैं आज उतारूं आरतिया।।1।।

चार दिशा के मानस्तम्भों को भी मेरा वन्दन।
मिथ्यादृष्टी जिनको लखकर पाते सम्यग्दर्शन।।प्रभू जी.....
करके दर्शन, प्रभु का वंदन, सम्यक् का हुआ प्रचार है,
मैं आज उतारूं आरतिया।।2।।

ध्वजाभूमि के अंदर देखो, ऊँचे ध्वज लहराएं।
मालादिक चिन्हों से युत वे, जिनवर का यश गाएं।।प्रभू जी.....
शुभ कल्पवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष, से समवसरण सुखकार है।
मैं आज उतारूं आरतिया।।3।।

भवनभूमि के स्तूपों में, जिनवर बिम्ब विराजें।
द्वादशगण युत श्रीमण्डप में, सम्यग्दृष्टी राजें।।प्रभू जी.....
अगणित वैभव, युत बाह्य विभव से, शोभ रहे भगवान हैं,
मैं आज उतारूं आरतिया।।4।।

धर्मचक्रयुत गन्धकुटी पर, अधर प्रभू रहते हैं।
उनकी आरति से ही ''चंदनामती'', दुःख हरते हैं।।प्रभू जी.....
वृषभेश्वर की, परमेश्वर की, गुण महिमा अपरम्पार है।
मैं आज उतारूं आरतिया।।5।।

भजन

-आर्यिका चन्दनामती

तर्ज-सौ साल पहले.....

बीते युगों में यहाँ पर समवसरण आया था.....समवसरण आया था।
मैंने न जाने तब कहाँ जनम पाया था।।टेक.।।

करोड़ों साल पहले भी, हजारों साल पहले भी।
ऋषभ महावीर इस धरती पर खाए और खेले भी।।
भारत की वसुधा पर तब, स्वर्ग उतर आया था.....स्वर्ग उतर आया था।
मैंने न जाने तब कहाँ जनम पाया था।।1।।

हुआ था जिनवरों को दिव्य केवलज्ञान जब वन में।
तभी ऐसे समवसरणों की रचना की थी धनपति ने।।
इन्द्र मुनी चक्री सबने लाभ बहुत पाया था-लाभ बहुत पाया था।
मैंने न जाने तब कहाँ जनम पाया था।।2।।

आज के इस महाकलियुग में नहिं साक्षात् जिनवर हैं।
तभी हम मूर्तियों को प्रभु बनाकर रखते मंदिर में।।
सतियों ने इनकी भक्ति करके नाम पाया था-करके नाम पाया था।
मैंने न जाने तब कहाँ जनम पाया था।।3।।

अधर आकाश की रचना धरा पर आज दिखती है।
बीच में 'चन्दना' देखो प्रभू की गंधकुटि भी है।।
समवसरण का यह वर्णन शास्त्रों में आया था.....शास्त्रों में आया था।
मैंने न जाने तब कहाँ जनम पाया था।।4।।